तिरुमल तिरुपति देवस्थान

सप्तगिरि

सचित्र मासिक पत्रिका

अप्रैल - 2019, रू. 5/-

रथसप्तमी (१२-०२-२०११) पर्व दिन
के अवसर पर तिरुमल में
'सप्तवाहनारूढ़' भगवान जी की
शोभायात्रा के दृश्य
गरुडवाहन
सूर्यप्रभावाहन
कल्पवृक्षवाहन
सर्वभूपालवाहन
हनुमद्वाहन
चंद्रप्रभावाहन
लघुशेषवाहन

योो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः॥

(- श्रीमद्भगवद्गीता १२-१७)

जो न कभी हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है तथा शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मों का त्यागी है - वह भक्तियुक्त पुरुष मुझको प्रिय है।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(५-२२)

(- गीता मकरंद)

इन्द्रिय और विषयों के संयोग से उत्पन्न होनेवाले जो भोग हैं वे दुःख के हेतु हैं। अतः विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता। यहीं नहीं, भगवान ने स्पष्ट कहा है कि वास्तविक सुख अन्दर ही है बाहर नहीं है। वह अंतःसुख अक्षय है।

तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति।

तिरुमल श्री बालाजी मंदिर : अर्जित सेवाएँ/उत्सव

क्रम सं.	सेवा / उत्सव का नाम	दिन	प्रवेश समय/सेवा का समय	व्यक्तियों को प्रवेश	टिकट का दाम रु.
	दैनिक सेवाएँ				
1.	सुप्रभात	प्रतिदिन	प्रातः 2-00 से 3-00 बजे	एक	120-00
2.	तोमाल सेवा	मंगल, बुध, गुरु	प्रातः 3-00 से 3-30 बजे	एक	220-00
3.	अर्चना	मंगल, बुध, गुरु	प्रातः 4-00 से 4-30 बजे	एक	220-00
	दैनिक उत्सव				
4.	कल्याणोत्सव	प्रतिदिन	दोपहर 10-00 से 12-00 बजे	दो	1,000-00
5.	डोलोत्सव (ऊँजल सेवा)	प्रतिदिन	दोपहर 11-00 से 1-00 बजे	एक	200-00
6.	अर्जित ब्रह्मोत्सव	प्रतिदिन	दोपहर 12-30 से 2-00 बजे	एक	200-00
7.	वसंतोत्सव	प्रतिदिन	दोपहर 2-30 से 3-00 बजे	एक	300-00
8.	सहस्रदीपालंकार सेवा	प्रतिदिन	सायं 5-00 से 5-30 बजे	एक	200-00
	साप्ताहिक सेवाएँ				
9.	विशेष पूजा	सोमवार	सुबह 6-00 से 6-30 बजे	एक	600-00
10.	अष्टदल पादपद्माराधना	मंगलवार	सुबह 5-00 से 5-30 बजे	एक	1,250-00
11.	सहस्रकलशाभिषेक	बुधवार	सुबह 5-00 से 5-30 बजे	एक	850-00
12.	तिरुप्पावडा सेवा	गुरुवार	सुबह 5-00 से 5-30 बजे	एक	850-00
13.	वस्त्रालंकार सेवा	शुक्रवार	प्रातः 3-00 से 4-00 बजे	दो (पती व पत्नी)	12,250-00
अ)	पूराभिषेक(१२ वर्ष से कम बच्चों को प्रवेश नहीं है)	शुक्रवार	प्रातः 3-00 से 4-00 बजे	एक	750-00
14.	निजपाद दर्शन	शुक्रवार	सुबह 4-30 से 5-30 बजे	एक	200-00
	वार्षिक/सामयिक सेवाएँ				
15.	प्लवोत्सव	फरवरी/मार्च	सायं 6-00 से 7-00 बजे	एक	500-00
16.	वसंतोत्सव	मार्च/अप्रैल	दोपहर 1-00 से 2-00 बजे	एक	300-00
17.	श्रीपद्मावती परिणय	मई	सायं 4-00 से 4-30 बजे	एक	1,000-00
18.	अभिदेयक अभिषेक	जून	सुबह 8-00 बजे	एक	400-00
19.	पुष्पपल्लकी	जुलाई	सायं 6-30 से 7-30 बजे	एक	200-00
20.	पवित्रोत्सव	अगस्त	सुबह 8-00 से 9-00 बजे	एक	2,500-00
21.	पुष्पयाग	नवंबर	सुबह 8-00 से 9-00 बजे	एक	700-00
22.	कोयिलाल्वार तिरुमंजन	वर्ष में चार बार	सुबह 10-00 से 11-00 बजे	एक	300-00

वाट्स याप : 9399399399
टोल फ्री : 1800-4254141,
1800-425333333
इ-मेइल : helpdesk@tirumala.org

उपर्युक्त सेवाओं के लिए केवल आनलइन से टिकटों का आरक्षण करवायें। अन्य विवरण के लिए ति.ति.दे. वेबसैटः www.tirumala.org/ www.ttdsevaonline.com के द्वारा संपर्क करें।

काल सेंटर नंः 0877-2233333, 2277777.

सप्तगिरि

वेङ्कटाद्रिसमं स्थानं
ब्रह्माण्डे नास्ति किञ्चन,
वेङ्कटेश समो देवो
न भूतो न भविष्यति।

तिरुमल तिरुपति देवस्थान की
सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष-४९ अप्रैल-२०१९ अंक-११

विषयसूची

तिरुमल बालाजी अन्नमय्या	डॉ.के.एम.भवानी	07
उगादि - पर्व	श्री वेमुनूरि राजमौलि	10
महान मत्स्य अवतार	श्री के.रामनाथन	12
सद्गुण सागर प्रभु श्रीराम	श्री ज्योतीन्द्र के. अजवालिया	15
श्री किडाम्बि आच्चान्	श्रीमती भवरी रघुनाथ रांदड	17
श्री अनंताल्वान स्वामीजी	श्री चंद्रकांत घनश्याम लहोटी	20
माता यशोदा	श्रीमती प्रीति ज्योतीन्द्र अजवालिया	24
श्री रामचरितमानस में धर्म-रथ की व्याख्या	श्री कन्हैयालाल शर्मा	26
शरणागति मीमांसा	श्री कमलकिशोर हि तापडिया	31
भागवत कथा सागर - देवहूति एवं कर्दम मुनि की कथा	श्री अमोघ गौराँग दास	33
श्री रामानुज नूट्रन्दादि	श्री श्रीराम मालपाणी	36
लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग की छह कठिनाइयाँ	श्री अमोघ गौराँग दास	37
वैरमुडि ब्रह्मोत्सव	श्री राजेन्द्र नटवरलाल लड्डा	39
समुद्र-मंथन	प्रो.योगेश चन्द्र शर्मा	40
अर्चामूर्ति का वैभव	श्रीमती वी.केदारम्मा	44
नव चेतना मास चैत्र	श्री पी.वी.लक्ष्मीनारायण	46
कृतयुग से ओंटिमिट्टा में कोदंडराम	डॉ.बी.के.माधवी	50
राशिफल	डॉ.केशव मिश्र	53

गौरव संपादक
श्री अनिलकुमार सिंघाल, आई.ए.एस.,
कार्यनिर्वहणाधिकारी, ति.ति.दे.

प्रधान संपादक
डॉ.के.राधारमण

संपादक
डॉ.वी.जी.चोक्कलिंगम

उपसंपादक
श्रीमती एन.मनोरमा

मुद्रक
श्री आर.वी.विजयकुमार, बी.ए., बी.एड्.,
उपकार्यनिर्वहणाधिकारी,
(प्रचुरण व मुद्रणालय),
ति.ति.दे. मुद्रणालय, तिरुपति।

श्री पी.शिवप्रसाद,
सेवानिवृत्त चित्रकार, ति.ति.दे., तिरुपति।

स्थिरचित्र
श्री पी.एन.शेखर, छायाचित्रकार, ति.ति.दे., तिरुपति।
श्री बी.वेंकटरमण, सहायक चित्रकार, ति.ति.दे., तिरुपति।

मुखचित्र
श्री सीतादेवी सहित श्री कल्याणराम, ओंटिमिट्टा।

चौथा कवर पृष्ठ
श्री सीतारामलक्ष्मण मूर्तियाँ, तिरुमल मंदिर।

सूचना

मुद्रित रचनाओं में व्यक्त किये विचार लेखक के हैं। उनके लिए हम जिम्मेदार नहीं हैं।

– प्रधान संपादक

अन्य विवरण के लिए:
CHIEF EDITOR, SAPTHAGIRI, TIRUPATI - 517 507.
Ph.0877-2264543, 2264359, 2264360.

website: www.tirumala.org or www.tirupati.org वेबसैट के द्वारा सप्तगिरि पढ़ने की सुविधा पाठकों को दी जाती है। सूचना, सुझाव, शिकायतों के लिए - sapthagiri_helpdesk@tirumala.org

जीवन चंदा .. रु.500-00
वार्षिक चंदा .. रु.60-00
एक प्रति .. रु.05-00
विदेशियों को वार्षिक चंदा .. रु.850-00

संपादकीय

धर्म वसंत उगादी

हमारे देवालय प्राचीन काल में सनातन धर्माचरण के मूल कारक है। मंदिर को केन्द्र बिन्दु बनाकर धार्मिक, भक्ति, वैज्ञानिक, आध्यात्मिक, संगीत इत्यादी सभी कार्यक्रम तथा कई ललित कलाओं का विकास करना आसान हो जाता है। सब को मिलाकर, उस गाँव को अच्छी राह पर चलाने में तथा लोगों के अंदर भक्ति चैतन्य जगाने में, मंदिरों की सेवा अनन्य है। मंदिर वैद्यालयों के रूप में, न्यायस्थान के रूप में, धर्माधर्म का विवेचन स्थान के रूप में, समाज को अच्छी राह पर चलाने के लिए मंदिर से बढ़कर और कोई शक्तिशाली साधन नही है।

वर्तमान काल परिस्थितियों में सनातन धर्म, हैन्दव संप्रदाय तथा उनका मान, बुझते हुए दीपों के समान टिमटिमा रही है। ऐसी स्थिति में ति.ति.दे. ने कई दशकों से धर्म चैतन्य स्फूर्ती तथा सत् संप्रदायों को बढ़ावा देने में अपनी ओर से बहुमुखी प्रयास कर रहा है। इसी के साथ, हमारे समाज के निम्नवर्ग के लोग अवसाद भरा जीवन जी रहे हैं, समाज में उनको समुचित स्थान दिलाने के साथ-साथ, उनके अन्दर धार्मिक चैतन्य को जगाकर, आत्म न्यूनता भाव को हटाने के लिए तिरुमल तिरुपति देवस्थान कटिबद्ध होकर आगे जा रही है।

इस महान आशय के अन्तर्गत एस.सी., एस.टी., बी.सी. जैसे सामाजिक वर्ग के गाँव के लोगों की इच्छा के अनुसार, भगवान के मंदिरों का निर्माण करके, वहाँ उन्हीं को अर्चकों के रूप में चुनकर, उन्हें परंपरागत अर्चना की विधि तथा आलय विज्ञान व हैन्दव संस्कृति को विस्तार से सिखाने के लिए २०१७, मई से ति.ति.दे. याजमान्य अर्चक प्रशिक्षण कार्यक्रम का निर्वहण कर रही है। अब तक लगभग छह सौ लोग प्रशिक्षित हुए हैं। इस कार्यक्रम के लिए उपयुक्त पाठ्य प्रणालिका तथा आलय विज्ञान से संबंधित ग्रन्थों को सरल व्यावहारिक भाषा में मुद्रित करके, इसको सिखाने के लिए, सुसिक्षित अध्यापकों को नियुक्त किया गया है। यह सभी कार्यक्रम तिरुमल तिरुपति देवस्थान के सनातन हिन्दू धर्म प्रचार परिषद् के अन्तर्गत हो रही है।

पदकवितापितामह अन्नमय्या के ''ब्रह्ममोक्कटे परब्रह्ममोक्कटे'' इस पद के अनुसार मानवजाति में ऊँच-नीच का भेदभाव नही है, भगवान की नजर में सब बराबर हैं, यह शिक्षण समाज में गहरे स्थाई प्रसार के द्वारा यह नूतन वसंत 'विकारि' उगादी विशेष रूप से धर्मकार्य कराताते हुए, विस्तृत रूप से सनातन धर्म प्रचार करने में श्रीवारि की कृपा से आगे बढ़ने की उम्मीद करेंगे।

'उगादी' पर्व के शुभ संदर्भ में हम यह अपेक्षा करते है कि यह 'उगादी' समाज को प्रगति की ओर आगे बढ़ायेगी। अन्नमय्या के आशय को सफल बनायेगी, श्री वेंकटेश्वर स्वामी कृपा सभी को प्राप्त होगी।

तिरुमल बालाजी अन्नमय्या

- डॉ.के.एम.भवानी

अन्नमाचार्य वर्धंति (१.४.२०१९) के संदर्भ में...

धर्म संस्थापनार्थाया संभवामि युगे युगे।

भगवान ने खुद कहा था कि जब भी अधर्म को नाश करके धर्म की रक्षा करना पड़ता है तब वह जरूर अवतरित होगा। ऐसे ही जब-जब संसार में भक्ति का प्रचार करने की नौबत आती है तब-तब भगवान ने कुछ भक्तों को पृथ्वी पर भेजकर उनके द्वारा भक्ति का प्रचार करवाया। ऐसे कुछ प्रसिद्ध भक्त थे उत्तर भारत के सूरदास, तुलसीदास, नामदेव, जयदेव, मीराबाई और दक्षिण भारत के अन्नमाचार्य, पुरंदरदास, नर्सी मेहता, त्यागराज और रामदास आदि। इन भक्तों ने अपनी भक्ति को साहित्य के माध्यम से प्रचार किए। इन सभी में फिर अन्नमाचार्य का विशिष्ट स्थान है। कहा जाता है कि भगवान का साक्षात्कार करने के लिए या मोक्ष पाने के लिए कलियुग में कृत, त्रेतायुगों की तरह यज्ञ करने की जरूरत नहीं पड़ती है सिर्फ नामोच्चारण से भगवान खुश होकर प्रसन्न हो जाता है। इसीलिए इन भक्तों ने अपने गानों से भगवान को प्रसन्न करके उनके दर्शन कर सके।

अन्नमाचार्य तेलुगु भाषा का प्रथम वाग्गेयकार हैं। उन्हें 'पदकवितापितामह' भी कहते हैं। (वाग्गेयकार माने जो खुद रचना करके उन्हें स्वर बद्ध करके खुद गानेवाला) उनका जन्म आँध्रप्रदेश का कड़पा जिले के 'ताल्लपाका' नामक गाँव में १४०८, मई २९ वैशाख शुक्ल पूर्णिमा के दिन हुआ था। लक्कमांबा, नारायणसूरि उनके माता-पिता थे। वे भगवान बालाजी के परम भक्त थे। शादी के बहुत साल तक उन्हें संतान प्राप्ति नहीं हुई थी तो वे एक शुभ दिन तिरुमल के लिए रवाना हुए। बालाजी का दर्शन करके संतान के लिए प्रार्थना की। तब उन्हें लगा कि एक दिव्य शक्ति ने आकर उनमें प्रवेश किया। बाद में लक्कमांबा गर्भवती हुई। माना जाता है कि भगवान श्रीहरि के खड्ग (नंदकम्) के अंश से अन्नमाचार्य का जन्म हुआ था।

बचपन से ही अन्नमाचार्य की बुद्धि कुशाग्र थी। अध्यापक जो भी कहते थे अन्नमय्या उसे तुरंत सीख लेते थे। बचपन में वे हमेशा भक्ति के गीत गाते रहते थे।

तिरुमल यात्रा

कहा जाता है कि जब अन्नमय्या की उम्र आठ साल की थी तब वह पहली बार तिरुमल आए। अन्नमय्या का परिवार बहुत बड़ा था। परिवार वाले उस पर नाराज थे कि वह कुछ काम किए बिना खेल-कूद में समय बिता रहा था। एक दिन नारायण सूरि ने क्रोधित होकर अन्नमय्या को खेत में जाकर घास काटकर लाने का आदेश दिया। अन्नमय्या पहली बार काम करने चला। आदत नहीं रहने के कारण घास काटते समय हाथ काट कर खून बहने लगा। तब उन्हें परिवार वालों पर गुस्सा आया। लगा कि इस दुनिया में उसे कोई अपना नहीं है। इतने में उसे तिरुमल जानेवाले एक यात्रियों का झुंड दिखाई पड़ा। अन्नमय्या जाकर उनमें शामिल होकर तिरुमल की ओर रवाना हुआ। रास्ते में वह बहुत थक कर एक जगह पर रुक गया। झुंड आगे निकल गया।

माँ पद्मावती का दर्शन

झुंड से आगे न चल पाने के कारण अन्नमय्या बहुत तड़पने लगा। थकान और भूख से तड़पने वाले उस बालक के पास खुद माँ पद्मावती ने आकर उससे कहा कि तिरुमल पहाड़ ऋषि-मुनियों से भरा हुआ पर्वत है। इस पवित्र क्षेत्र को चप्पल पहन कर नहीं चढना है। तब अन्नमय्या ने चप्पल उतार कर देखा तो उन्हें लगा कि तिरुमल में हर वृक्ष, पेड़-पौधे, पक्षी-जानवर सभी मुनियों के ही अवतार हैं। भगवान की स्तुति करने के लिए ही मुनिगण ऐसे अवतरित हुए थे। तिरुमल के चारों ओर वेदनाद सुनाई दे रहा है। तब अन्नमय्या बहुत चकित होकर तिरुमल पहाड़ को दंड़वत प्रणाम किया। तो माँ पद्मावती ने उन्हें खाने के लिए प्रसाद दिया। खाते ही अन्नमय्या में सरस्वती का अंश प्रवेश किया। वह तुरंत अलमेलुमंगा (पद्मावती) पर एक शतक (सौ पद्यों की रचना) रचना की।

अम्मकु ताल्लपाका घनुडन्नडु पद्य शतंबु सेप्पेको...

...

सम्मदमंदि वर्धिल्लुमु जव्वनी लीलला वेंकटेश्वरा।।

बालाजी का दर्शन

अन्नमय्या तिरुमल पहुँचकर बालाजी का दर्शन करके पुलकित हो गया। सर्वाभरणों से अत्यंत सुंदर दिखनेवाले स्वामी को देखते ही अन्नमय्या में भावावेश होने लगा। वह ऐसा गाने लगा कि...

पोडगंटि मय्या मिम्मु पुरुषोत्तमा, मम्मु

...

चेरुव चित्तमु लोनि श्रीनिवासुड़ा।।

बालाजी का अनुग्रह

तिरुमल में रहते हुए अन्नमय्या हर दिन बालाजी का दर्शन करते हुए समय-समय पर कुछ कविता गान, पद्य गान करते थे। एक बार जब पुजारी बालाजी की अर्चना करने लगे तो अन्नमय्या भावावेश में आकर तुरंत एक शतक रचना की तो भगवान के गले से मोतियों का हार नीचे गिर पड़ा। तो पुजारी ने चकित होकर कहा कि यह बालाजी का आशीर्वाद है। अन्नमय्या साधारण बालक नहीं है। वह भगवान का वर प्रसाद है।

अन्नमय्या-अन्नमाचार्य कैसे बना?

उन दिनों में तिरुमल में 'घनविष्णु' नामक एक संत रहता था। वह भगवान की सेवा करते हुए समय-समय पर लोगों को भक्ति का उपदेश भी देता रहता था। एक दिन खुद बालाजी ने उन्हें सपने में दर्शन देकर आदेश दिया कि "कल तुम तेरे पास आनेवाले अन्नमय्या नामक मेरे भक्त को मेरे शंख और चक्रों का मुद्रा धारण करो।" आदेश के साथ भगवान ने अपनी मुद्राएँ भी दीं। तो दूसरे दिन घनविष्णु ने स्वामी के आदेशानुसार ब्राह्मण नंदवरीक वंश में पैदा हुआ अन्नमय्या को वैष्णवों की मुद्रा धारण करके अन्नमय्या को अन्नमाचार्य बना दिया।

अपने बेटे को ढूँढते हुए तिरुमल आए माँ-पिता के साथ अन्नमाचार्य स्वामी के आदेशानुसार फिर ताल्लपाका पहुँचे और दो लड़कियों से शादी की। सन् १४२४ में ('क्रोधि' नामक साल) अपने जन्मदिन के अवसर पर अन्नमय्या तिरुमल पहुँचा। स्वामी का दर्शन करने के बाद वराह स्वामी मंदिर के बगल में आराम करने लगे। लेकिन बहुत समय कोशिश करने पर भी उसे नींद नही आई तो उठकर अपने तानपूरा लेकर किसी राग का आलापना किया। अचानक उसके मुँह से निकला...

ब्रह्म कडिगिना पादमु...

ब्रह्ममु ताने नी पादमु...

....

तिरुवेंकटगिरी तिरमनि चूपिना

परम पदमु नी पादमु।।

यह गाना समाप्त होने के बाद अन्नमय्या बार-बार इसी को दोहराने लगे। आनंद सागर में डूबे हुए अन्नमय्या को

बालाजी ने दर्शन दिए। अन्नमाचार्य स्वामी के पैरों पर गिर पड़ा।

बालाजी का आदेश

बालाजी ने अन्नमाचार्य को आदेश दिया कि "हे अन्नमाचार्या! मैं तुम्हारे गान सुनकर बहुत खुश हूँ। तुम आज से लेकर हर दिन मुझे एक गाना सुनाना है। मैं तुम्हारे गीतों के अलावा और किसी का गान नहीं सुनूँगा। यह मेरी प्रतिज्ञा है। तेरा व्रत है।" ऐसा आदेश देकर बालाजी अदृश्य हो गए।

देश पर्यटन-संकीर्तना यज्ञ

भगवान के आदेशानुसार अन्नमाचार्य हर दिन एक-एक नया संकीर्तना (अन्नमाचार्य के गीत संकीर्तना कहा जाता है) लिखते हुए हर गाँव-शहर घूमते हुए संकीर्तना यज्ञ करने लगे। कहा जाता है कि अन्नमय्या अपने अंतिम समय तक संकीर्तनों की रचना किए तो पूरे ३२,००० हो गए। लेकिन आज सिर्फ १२,००० संकीर्तनाएँ ही उपलब्ध हैं।

कन्यादाता

अन्नमाचार्य ने भगवान बालाजी पर हर समय के अनुसार रचनाएँ की। प्रातः सुप्रभात से लेकर रात को एकांत सेवा तक हर पूजा के अलग-अलग संकीर्तनों को लिखे।

सुप्रभात

विन्नुपालु विनवले विंतविंतलु
पन्नगपु दोमतेरा पैकेत्तवेल्लय्या।।

एकांत सेवा

जो अच्युतानंदा जो-जो मुकुंदा
लालि परमानंदा रामा गोविंदा, जो... जो...

भगवान के भक्त अन्नमाचार्य ने तिरुमल में हर दिन कल्याण करने का तरीका शुरू की। आज भी अन्नमाचार्य के वंशज हर दिन स्वामी के कल्याणोत्सव में कन्यादाता बनकर माँ पद्मावती की तरफ से शादी में बैठते हैं।

पिडिकिटा तलंब्राला पेंड्लिकूतुरु,
....
वेट्टिना निधानमैना पेंड्लिकूतुरु।।

भगवान में लीन

बालाजी पर भक्ति-श्रृंगार गीतों के साथ-साथ कई शतक रचनाएँ किया अन्नमाचार्य लंबी उमर तक यानी ९५ साल जिंदा रहकर १५०३, दुंदुभि नामक साल में, फाल्गुण मास के कृष्ण पक्ष द्वादशी के दिन भगवान में लीन हो गए।

कहा जाता है कि अन्नमाचार्य के गान भगवान को इतना पसंद है कि उसे सुने बिना स्वामी उठते न थे, न सोते थे। इसीलिए आज भी अन्नमाचार्य के वंशज तिरुमल में सुप्रभात और एकांत सेवा में तानपुरा बजाते हुए प्रातः स्वामी को उठाते थे रात को लोरी गाकर स्वामी को सुलाते थे।

तिरुमल तिरुपति देवस्थान - अन्नमाचार्य प्रोजेक्ट

तिरुमल तिरुपति देवस्थान अन्नमाचार्य के नाम से एक परियोजना संस्था की स्थापना करके उनके गीतों को स्वर बद्ध करा रहे हैं। हर साल नए-नए गानों की सीडियाँ निकलवा रहे है। अन्नमाचार्य की जयंती और वर्धंति उत्सव मना रहे हैं।

जय बालजी

उगादि - पर्व

- श्री वेमूनूरि राजमौलि

ब्रह्म की सृष्टि में प्रलय के पश्चात् फिर से प्रारंभ होने वाले अध्याय को ''ब्रह्म कल्प'' कहते हैं। इस प्रारंभ काल को ''कल्पादि'' नाम से व्यवहृत करते हैं। प्रत्येक कल्प में पहले आनेवाले ''आदि'' समय ही ''उगादि'' है। इसके बारे में ''सूर्य सिद्धांत'' नामक ज्योतिष ग्रन्थ में स्पष्ट बताया गया। तब से लेकर आज तक इसी पद्धति का अनुसरण कर रहे हैं। प्रत्येक तेलुगु-संवत्सर के आरंभ के दिन को ''उगादि-पर्व'' मनाने का आचार पड़ गया। ''युगादि'' - इस संस्कृत शब्द के उच्चारण भेद के कारण ''उगादि'' नामक तेलुगु-शब्द बन गया।

उगादि पर्व के संदर्भ में...
(६.०४.२०१९)

सृष्टि का प्रभव (जन्म, आरंभ) होने के प्रथम संवत्सर को ''प्रभव'' नाम दिया गया। इस प्रकार यह नाम कृतार्थ बन गया। ''प्रभव'' से लेकर ''क्षय'' संवत्सर तक क्रम से (६०) साठ नामों से संवत्सर-गणन चलता है। इसीलिए हम जिस संवत्सर में पैदा हुए, उस संवत्सर से हमारी आयु साठ वर्ष बीतने पर, फिर से वही संवत्सर आ जाता है। तब हम ''षष्टिपूर्ति'' मना लेते हैं। वेदों का अपहरण करने वाले सोमक नामक राक्षस का वध करके श्री महाविष्णु ने फिर से इसी दिन वेदों का पुनरुद्धरण किया। इस तरह भी उगादि ने अपनी विशिष्टता को बनाये रखा। तेलुगु संवत्सर चैत्र (वसन्त) से लेकर शिशिर तक छः ऋतुओं में विभक्त हुआ। सालभर अनेकों संकटों का सामना करने वाले प्रकृति के पेड़-पौधे शिशिर ऋतु में पत्ते झड़ाकर जडत्व को प्राप्त करते हैं। चैत्रमास (वसन्त ऋतु) में पल्लवित होने से वृक्ष चैतन्यवान दिखते हैं। इस प्रकार प्रकृति से संभवित होने वाला नूतन वर्ष, चैत्र मास से प्रारंभ होता है। इसीलिए मासारंभ को ''उगादि'' नाम पड़ गया; ऐसा हम कह सकते हैं। उगादि के दिन ''अभ्यंगन-स्नान, पुण्यकाल-संकल्प, उगादि-पच्चडि का सेवन, धर्मकुंभ, सृष्टि-क्रम-वर्णन, कल्पादि वैवस्वत मन्वन्तर-विवरणों से युक्त पंचांग का श्रवण आदि का विधि पूर्वक आचरण करना चाहिए; ऐसा बुजुर्गों का कथन है।

पाठकों, लेखक-लेखिकाओं और एजेंटों को विकारि नाम संवत्सर की हार्दिक शुभकामनाएँ... श्री वेंकटेश्वरस्वामी का कृपाकटाक्ष सभी पर भरपूर हो और स्वास्थ्य एवं ऐश्वर्य की सब पर वर्षा हो, इसके लिए सप्तगिरि मासिक पत्रिका के कर्मचारी, स्वामी से प्रार्थना करते हैं...

- प्रधान संपादक

अभ्यंगन स्नान

सूर्योदय से पहले ही तिलों का तेल सिर को लगाकर आँवला, मूंगदाल का आटा, कचूर, भावंचा (एक प्रकार के बीज), हल्दी आदि से बने उबटन से मिलकर, रीठा का उपयोग करके शिरस्नान करना चाहिए। गरम पानी से अभ्यंगन स्नान करना श्रेष्ठ माना जाता है। इसके पश्चात्

नूतन-वस्त्र-धारण करके, तिलक लगाकर, संकल्प कर लेना चाहिए; ऐसा ''धर्मसिन्धु'' बताता है।

पुण्यकाल - संकल्प

सूर्योदय के एक मुहूर्त काल (बीस मिनट) तक प्रतिपदा रहने पर भी, उसी दिन, पर्व के संदर्भ पर नूतन-संकल्प लेकर त्यौहार मनाना चाहिए। सूर्य को अर्घ्य, दीप, धूप, पुष्पांजलि समर्पित करनी चाहिए; ऐसा शास्त्र वचन है।

धर्म-कुंभ

आगामी दिनों में पूर्ण मनोरथ-सिद्धि व सकल सौभाग्य प्राप्त होने के संकल्प-बल से, उगादि के दिन पंच-लौह-पात्र या मिट्टी की मटकी को कलश के रूप में लेकर सुगन्ध-जल, चन्दन, पुष्पाक्षत डाल कर उगादि-देवता का आवाहन करना चाहिए। पुण्याहवचन मन्त्र पढ़ते एक थाली में चावल डालकर उस पर कलश धर कर नूतन वस्त्र लपेट कर ऊपरिभाग पर नारियल धर देना चाहिए। कुंकुम, हल्दी, चन्दन समर्पित करके पुरोहित अथवा गुरु या मंदिर में पुजारी को दान देकर उनके आशिश पाने चाहिए। इसी को ''धर्म-घट-दान'' अथवा ''प्रसादनं'' कहते हैं। आज भी गाँवों में इस विधि का आचरण कर रहे हैं।

पंचांग श्रवण

महापर्व दिनों जैसे कल्पादि तिथियों, मन्वन्तर तिथियों, दशावतार-पुण्य तिथियों इत्यादियों को पंचांग में वर्णित तिथि, वार, नक्षत्र, योग, करण नामक पाँच अंगों के रूप में दिखाते हैं। इस प्रकार के पंच अंगों के श्रवण से भविष्य में घटित होनेवाली विशेषताएँ, त्यौहार, ग्रहण, वर्षा का विवरण, काल-निर्णय इत्यादि विषय जान ले सकते हैं। उगादि के दिन पंचांग श्रवण करना हमारे लिए विशेष विधि है; ऐसा हमको जानना चाहिए। इसलिए हैन्दव-संप्रदाय में उगादि के दिन पंचांग श्रवण करने की प्रक्रिया ने एक विशेष स्थान प्राप्त किया।

तिथेश्च श्रियमाप्नोति, वारादायुष्य वर्धनम्।
नक्षत्रात्‌हरते पापं, योगाद्रोग निवारणम्।।
करणात्कार्य सिद्धिस्तु, पंचांग फलमुत्तमम्।
काल वित्कर्म कृद्धीमान देवतानुग्रहं भवेत्।।

तिथि से सम्पत्ति; वार से आयु; नक्षत्र से पाप-परिहार; योग से व्याधि निवृत्ति; करण से कार्यानुकूलता प्राप्त होते हैं। काल, जानकर, कर्म करने वाले आस्तिक भगवदनुग्रह पाकर सुख का अनुभव करते हैं। रामायण आदि पवित्र ग्रन्थों के पठन से जो विशेष फल प्राप्त होता है, वह इस पंचांग श्रवण के द्वारा भी पा सकते हैं।

भूदान, सुवर्णदान, गजदान, गोदान, सर्व लक्षणयुक्त कन्या का उत्तम वर को दान करने पर जो फल मिलता है, वह पंचांग-श्रवण के समान होता है। शास्त्र विधि के अनुसार पंचांग-श्रवण करने से सूर्य के द्वारा शौर्य, तेज; चंद्र के द्वारा भाग्य-वैभव; कुज के द्वारा समस्त मंगल; बुध के द्वारा बुद्धि विकास; गुरु के द्वारा गुरुत्व, ज्ञान; शुक्र के द्वारा सुख; शनि के द्वारा दुःख-राहित्य; राहु के द्वारा प्राबल्य तथा केतु के द्वारा अपने वर्ग की प्रामुख्यता बढ़ती है; ऐसा शास्त्र-वचन है।

शुभम् भूयात्

तेलुगु मूल - डॉ.देवुलपल्लि पद्मजा

साभार - आन्ध्रज्योति (दैनिक)

महान मत्स्य अवतार

- श्री के.रामनाथन

आदि-अंत रहित भगवान सूक्ष्म एवं छोटी-छोटी बिंदु में भी प्रकट होते हैं। मैं बडी नम्रता से उसे देखकर चकित होता हूँ। ऐसा प्रकट होने वाले ज्ञान के भण्डार है भगवान।

- महान ज्ञानी ऐंस्टैन

संसार के पालक एवं रक्षक के रूप में भगवान श्रीविष्णु हिंदू समाज में पूजे जाते हैं। हिंदू धर्म में सृष्टि कर्ता भगवान ब्रह्म, संहार भगवान शिव के साथ संरक्षक भगवान विष्णु आदि को त्रिमूर्ति के नाम से स्तुति करते हैं। इस धरती पर जन्म दो प्रकार के हैं, प्रथम है साधारण मानव रूप में पैदा होना जिसे मनुष्य जन्म कहते हैं और दूसरा भगवान का किसी उद्देश्य से इस धरती पर जन्म लेना या दैवलोक से नीचे उतर आना जिसे अवतार कहते हैं। भगवान विष्णु के अवतारों का अपना विशेष रूप और महान उद्देश्य होता है। इस धरती पर उनका हर अवतार उत्तम जन की रक्षा, अधम का अंत और धर्म को स्थापित करने के श्रेष्ठ उद्धेश्य से हुआ है।

युग और युगधर्म

पुराणों के अनुसार युग चार माने जाते हैं। जैसे कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग, कलियुग आदि। इन चार युगों में हर एक का अपना अलग युगधर्म प्रधान होता है। कृतयुग में ज्ञान और धर्म के परिपूर्ण विकास को पाते हैं। यज्ञ आदि कार्यों से धर्म की रक्षा होती थी। त्रेतायुग में धर्म पर की गयी बाधाओं को दूर करने का कार्य प्रधान रहा। द्वापरयुग में धर्म और अधर्म का समान विकास और अधर्म पर धर्म की विजय आदि को देखते हैं। आने वाला कलियुग का प्रधान लक्ष्य तो बढ रहे अन्याय, अत्याचार, अनाचार आदि के कठोर अंत की संभावना कहा जाता है।

अवतार और उद्देश्य

भगवान श्रीविष्णु के प्रमुख दस अवतार तो हमें यही बताते हैं कि वे सब जीव मात्र की परिमाण का स्वरूप है। मत्स्य, कूर्म, वराह आदि अवतारों के द्वारा जानवरों की स्थिति प्रकट की जाती है। नरसिंह के अवतार द्वारा मानव जानवर की मध्यम स्थिति प्रकट होती है। परशुराम के अवतार से मानव शरीर में जन्म लेकर बदला लेने वाले गुण तत्त्व को प्रकट किया जाता है। श्रीकृष्ण एवं बलराम के अवतारों द्वारा इच्छा एवं कर्मफल की सोच रहित अन्याय को अंत करने का कार्य प्रकट किया गया हैं। उत्तम गुणों से भरपूर मानव के रूप में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का अवतार माना जाता है। आखिर आने वाला कल्कि का अवतार तो हाथ में खड्ग धारण कर अन्याय एवं अनाचार को अंत करने वाले का रूप को प्रकट किया गया है।

प्रथम अवतार

भगवान विष्णु के प्रमुख दस अवतारों में मत्स्य अवतार ही सर्व प्रथम है। सब जानते है कि विकास, समृद्धि, उन्नति आदि का मूलाधार ज्ञान है। वेद ही ज्ञान का केंद्र है, इसलिए उसकी रक्षा हेतु

श्री मत्स्य जयंती (८.०४.२०१९) के संदर्भ में...

श्रीविष्णु ने मत्स्य अवतार लिया। याने सृष्टि को प्रलय से बचाकर रक्षित करना ही इस अवतार का महत्वपूर्ण लक्ष्य है।

अवतार की कहानी

भगवान श्रीविष्णु की आज्ञा पर भगवान ब्रह्म ने वेदों की सहायता से भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्गलोक, मगरलोक, जनलोक, तपोलोक, सत्यलोक आदि सात ऊपरी लोकों को स्थापित किया। उसके बाद अतल, वितल, तल, तलातल, रसातल, महातल, पाताल आदि सात नीचे के लोकों को भी स्थापित किया। वेदों के कहे अनुसार वे उन सभी लोकों में स्वेतज, अंडज, उत्पिज, जरायुज आदि चार प्रकार के स्थावर-जंगम जीवों को बनाकर उसकी रक्षा करने लगे। ये सब कार्य भगवान ब्रह्म के दिन के समय में हुए थे। रात का समय आया, जब भगवान ब्रह्म नींद में थे, तब बडी विपत्ति आ निकली। रात के समय उधर आया हयग्रीव नामक राक्षस ने सृष्टि के काम को बंद करने के विचार से चार वेदों को लेकर समुद्र के अन्दर भाग गया। उसने सोचा कि समुद्र के अन्दर रहने पर उसे कोई पकड नहीं सकता।

उसका विचार था कि प्रलय के बाद वेदों के बिना नई सृष्टि नहीं होगी और फिर नये लोकों को स्थापित करना असंभव हो जायेगा, जिससे देवगणों का आदर घट जायेगा और राक्षसों का बल बढेगा।

यह जानकर भगवान श्रीविष्णु उस राक्षस का वध करके वेदों को बचाकर वापस लाने के विचार से एक मछली के रूप में अवतरित हुए। रात बीतकर सूर्योदय का समय आया। उस समय भगवान का महान भक्त और सत्य को सदा पालन करने वाला प्रजाप्रिय राजा सत्यव्रत कृतमाला नामक नदी में स्नान करके जलतर्पण कर रहा था। तब उसकी अंजलि में पानी के साथ एक छोटी-सी मछली आ गयी। सत्यव्रत ने तुरंत उस मछली को नदी में छोड दिया। तब उस मछली ने मानवीय भाषा में कहा, ''हे राजन! आप तो बडे दयालू हैं। आप तो जानते हैं कि जल में रहने वाले जंतु अपनी ही जाति वालों को खा जाते हैं। मैं अभी अत्यंत छोटी हूँ, उन बडे-बडे जल जीवों से अत्यन्त परेशान हो रही हूँ। उनका आहार होने के लिए आप मुझे जल प्रवाह में क्यों छोड रहे हैं, मेरी रक्षा कीजिए।''

मछली की प्रार्थना सुनकर राजा सत्यव्रत ने उस मछली को अपने कमण्डल में रख लिया और अपने महल ले आया। परंतु वह मछली तो एक ही रात में इतनी बडी हो गयी कि उसे कमण्डल में रहना कष्ट हो गया। अब वह बोली, ''राजन! इस छोटे स्थान में रहने से मुझे कष्ट हो रहा है, मुझे बडा स्थान चाहिए।''

यह सुनकर राजा ने उसे एक मटके में छोड दिया। लेकिन क्या आश्चर्य! वह तो दो घडी में तीन हाथ बढ गयी। अब वह स्थान भी उसके लिए छोटा हो गया। इसलिए राजा ने अब उसे सरोवर में छोड़ दिया। पर देखते देखते ही उसने पूरे सरोवर घेर लिया। उसका आश्चर्यजनक विकास देखकर राजा चकित हो उठा। उसने मछली को वास्तविक रूप में आने की प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना पर चार भुजधारी श्रीविष्णु उसके सामने प्रकट हुए। उन्होंने राजा से कहा, ''हे राजन! आज से सात दिन बाद महाप्रलय होगी। मेरी प्रेरणा पर एक

नाव तुम्हारे पास आयेगी। तब तुम अपने परिवार सहित सात ऋषियों, औषधियों, बीजों और प्राणियों के सूक्ष्म शरीर को लेकर उसमें बैठ जाओ। यात्रा में जब नाव डगमगायेगी तब मैं मत्स्य के रूप में तुम्हारे पास आऊँगा। उस समय तुम वासुकि नाम के साँप द्वारा उस नाव को मेरे सींग से बाँध दो। मैं उस समय तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देकर आत्म ज्ञान प्रदान करूँगा।'' भगवान के कहे अनुसार राजा ने ऐसा ही किया और आखिर उसे उनके दिव्य दर्शन भी प्राप्त हुए।

इतने में भगवान ब्रह्म नींद से जाग उठे, तभी उनको पता चला कि वेदों की चोरी हुई है। उन्होंने बडी चिंता में आकर श्रीविष्णु से प्रार्थना की। तब भगवान विष्णु उसके सामने प्रकट हुए और राक्षस हयग्रीव के दुष्कर्म के बारे में विस्तार से बताया। यह भी कहे कि मत्स्य अवतार में उस राक्षस का वध करके वेदों को सुरक्षित वापस लाये हैं। उसके बाद उन्होंने उन वेदों को भगवान ब्रह्म के हाथ में दिया और राजा सत्यव्रत से लाये गये नाव को भी सौंप दिया। तब से भगवान ब्रह्म ने फिर सृष्टि का कार्य प्रारंभ किया। फिर श्रीविष्णु ने राजा सत्यव्रत को वैवस्वत मनु बनकर राज्य शासन करने का वर दिया।

मत्स्य जयंती

भगवान श्री विष्णु के मत्स्य अवतार पर हर साल चैत्र के शुक्ल पक्ष के तृतीय दिवस पर मत्स्य जयंती मनायी जाती है। मत्स्य जयंती यही सूचित करती है कि भगवान सभी प्राणियों में निवास करते हैं। उनके लिए न कोई ऊँचा है और न कोई नीचा, सभी प्राणी एक समान हैं। नश्वर जगत में उनके अतिरिक्त कहीं कुछ भी स्थाई नहीं है। जो प्राणी उनको सब में देखता हुआ जीवन व्यतीत करता है, वह अंत में उनमें ही मिल जाता है।

इस मत्स्य जयंती में हम भी अवतार पुरुष भगवान श्री विष्णु की स्तुति करेंगे और आत्म ज्ञान का सुख प्राप्त करेंगे।

तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति।

सप्तगिरि चंदादारों के लिए सूचना

सप्तगिरि मासिक पत्रिका पाठकों को हर महीने सही ढंग से पहुँचाने के लिए विविध क्रियाकलाप कार्य कर रहे हैं विषय पाठकगण समझ सकते हैं। इसी विषय के दौरान भक्तों का पता क्रमबद्ध करने के लिए कार्यवाहीन चर्याये लेते है। पाठकगण इस विषय को दृष्टि में रखकर निम्नलिखित प्रकार अपना संबंधित विवरण प्रधान संपादक कार्यालय को सूचित कीजिए।

१. 'सप्तगिरि' मासिक पत्रिका के बारे में सुझाव/सूचनाएँ/शिकायतों को sapthagiri_helpdesk@tirumala.org के द्वारा सूचित कीजिए।

२. सप्तगिरि चंदादारों का पता क्रमबद्ध कराने के लिए ०८७७-२२६४५४३ फोन नंबर को चंदादार फोन करके अपना पूरा पता, पिन कोड, मोबाइल नंबर जैसे विवरण कार्यकालीन (सुबह १०.३० से सायं ५.०० के अंदर) समयों में संपर्क करें।

३. उपरोक्त फोन नंबर या वेबसैट sapthagiri_helpdesk@tirumala.org के द्वारा भी अपने विवरण को बता दे सकते हैं।

४. आनलॉइन चंदादार अपने पूरे पते के संबंधित विवरण ति.ति.दे. वेबसैट के द्वारा बता दें।

प्रधान संपादक,

सप्तगिरि कार्यालय, तिरुपति।

सद्‌गुण सागर प्रभु श्रीराम

- श्री ज्योतीन्द्र के. अजवालिया

श्रीरामनवमी (१४.०४.२०१९) के संदर्भ में...

जब जब धरातल पर धर्म का नाश होता है अधर्म की वृद्धि होती है। साधु संतों का तिरस्कार होता है। जब ईश्वर पृथ्वी पर अवतरण करता है। भगवान ने 'गीता' में कहा है कि-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्यानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे।।
(श्रीमद्‌भगवद्गीता, अध्याय-४/७,८)

आज हम यहाँ राम जन्म के उपलक्ष में रामचरित्र का अनुसंधान करने जा रहे है। प्रभु श्रीराम ने पृथ्वी पर धर्म की रक्षा के लिए और अधर्म का विनाश करने के लिये जन्म लिया।

आपदा मपहर्तारं दातारं सर्वसंपदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्।।

भगवान श्रीहरि विष्णु के प्रमुख दस अवतारों में श्रीराम अवतार श्रेष्ठ माना गया है। प्रभु श्रीराम का जन्म कारण जन्म है श्रीराम सामान्य मनुष्य की तरह रहे समाज के लोगों को जीवन जीने का तरीका बताया है। सरल स्वभाव, शांत प्रवृत्ति भगवान जन्म के कारण युगों युगों से सभी मानव श्रीराम की पूजा करते आये है। महर्षि वाल्मीकि कहते है कि-

चरितं रघुनाथस्य शतकोटी सविस्तरम्।

भारत का एकपण क्षेत्र ऐसा नही है कि जहा राम मंदिर न हो भारत के सभी घरों में राम भजन, राम पूजा और राम नाम जप होते रहते है। प्रभु श्रीराम ने जन्म लिया, अयोध्या में और विवाह के बाद चौदा साल का वनवास किया इस दौरान पूरे भारत वर्ष की पद यात्रा की तब से आज तक सभी गल्ली सभी महोल्ले में राम मंदिर देखने को मिलते है।

श्रीराम जन्म का उद्देश

श्रीरामनवमी हिन्दुओं का प्रमुख धार्मिक त्योहार है श्रीराम का जन्म त्रेतायुग में वसंत ऋतु में चैत्र सुद्ध नवमी, गुरुवार, पुनर्वसु नक्षत्र, करकट लग्न, अभिजित मुहूर्त दोपहर को बारह बजे हुआ। इस पवित्र तिथि को पूरा भारत वर्ष राम जन्म महोत्सव के रूप में बडी धूमधाम से मनाते है। राम जन्म का प्रमुख उद्देश्य रावण को संहार करके पृथ्वी को असुर मुक्त करके पृथ्वी पर सुशासन स्थापित करना था। सब मानव लोगों को प्रभु के मार्ग पर ले के आदर्श जीवन जीने की कला दिखाई और मानव कल्याण का रास्ता बता दिया।

सूर्यवंश में प्रभु श्रीराम अवतरण और रामचरित्र

अयोध्या नरेश महाराज दशरथ को तीन पत्नियाँ थी लेकिन एक पण पत्नी को संतान नही थे। महाराज दशरथ वारिस न होने की वजह से बहुत व्याकुल थे इस समय महर्षि वसिष्ठ ने पुत्रकामेष्ठी यज्ञ करने की सलाह दी। ऋष्यश्रृंग महर्षि के आचार्य पद पर पुत्रकामेष्ठी यज्ञ का बहुत बडा आयोजन हुआ। यज्ञ पूर्णाहुति के समय अग्निदेव

खीर पात्र लेके उपस्थित हुये। अग्निदेव का प्रसाद तीनों रानीओं ने पाया प्रसाद का फल स्वरूप माता कौशल्या ने प्रभु राम को जन्म दिया, कैकेयी ने भरत को जन्म दिया, सुमित्रा ने लक्ष्मण और शत्रुघ्न को जन्म दिया। इस तरह सूर्यवंश में श्रीहरि विष्णु ने प्रभु श्रीराम के रूप में सातवाँ अवतार लिया। उसका बालपन अपने माता-पिता और गुरुजनों के बीच पला गुरुजनों के प्रति अपार श्रद्धा और मान सम्मान रखते थे। बाद में विश्वामित्रजी यज्ञसंरक्षण हेतु प्रभु श्रीराम और लक्ष्मणजी को साथ में लेके गये इस घटना के दौरान जनक नरेश ने सीता स्वयंवर का आयोजन किया तब विश्वामित्रजी की आज्ञा से प्रभु श्रीराम ने स्वयंवर में हिस्सा लिया और जानकी के साथ विवाह हुआ। हम सब लोग जानते है कि बाद में कैकेयी और मंथरा की कुटिल नीति की वजह से और पिता के वचन पालन के लिये प्रभु श्रीराम मैया सीता और भैय्या लक्ष्मण सब राज्य संपदा, सगे संबंधी को त्याग कर चौदा साल वन में चले गये। वनवास के दौरान असुर रावण ने सीता मैया का हरण किया, बीच में हनुमान जी से भेंट हुई उसकी मदद से रावण का संहार किया। चौदह साल की अवधी पूरी होने के बाद पुनः अयोध्या पधारे और अयोध्या का सुशासन संभाला इस तरह धरातल पर एक असुर के त्रास से धरा को मुक्त करके पुनः वैकुंठ पधारे।

रामनाम का माहात्म्य

हमारे शास्त्रों में प्रभु श्रीराम नाम का महत्व बहुत बताया है हमारे हृदय में दिव्य आत्मा के स्वरूप में विराजे हुये राम को ठीक तरह पहचानना चाहिए।

कैलास में एक बार शिव पार्वती के बीच वार्तालाप चल रहा था तब पार्वती ने महादेवजी को प्रश्न किया कि विष्णुसहस्रनाम का सूक्ष्म मार्ग क्या है? इसके उत्तर में महादेवजी ने ये मंत्र बताया।

श्रीराम राम रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्र नाम तत्तुल्यं राम नाम वरानने।।

इस मंत्र का तीन बार जप करने से एक विष्णुसहस्रनाम पाठ का फल प्राप्त होता है। कहने का मतलब यह है कि रामनाम जप अति उत्तम साबित हुआ है। मानव के मृत्यु के समय इस मंत्र का कान में जप करने से जीवात्मा की सद्गति होती है।

कलियुग में श्रीराम तिरुपति बालाजी के स्वरूप में

श्रीहरि विष्णुमूर्ति प्रभु श्रीराम कलियुग में तिरुमल पर्वत पर श्री वेंकटेश (श्री तिरुपति बालाजी) के रूप में भक्तों की मनोकामना पूर्ण करने हेतु स्थिर हुये है, आज भी तिरुपति में तिरुपति बालाजी को जगाने के लिये ये सुप्रभात गाया जाता है।

कौशल्या सुप्रजा राम पूर्व संध्या प्रवर्तते... कहने का तात्पर्य यह है कि त्रेतायुग में शुरू हुई ये मंगल प्रार्थना आज हम कलियुग में भी गाते है इस सुप्रभात में प्रभु श्रीराम के साथ माता कौशल्या की भी यशगाथा जुडी हुई है।

प्रभु श्रीराम सद्गुण सागर

प्रभु श्रीराम सद्गुणों का सागर है सत्य, दया, क्षमा, मृदुत्व, धीरत्व, वीरत्व, गांभीर्य, शास्त्रज्ञान, पराक्रम, निर्भयत्व, विनय, शांति, संयम, निस्पृहत्व, नीतिज्ञता, तेजोप्रीति, त्याग, मर्यादारक्षण, एक पत्नीत्व, प्रजारंजकत्व, ब्राहणभक्ति, मातृ-पितृ भक्ति, गुरुभक्ति, भातृप्रेम, मैत्रीभाव, शरणागत वत्सल, प्रतिज्ञा पालन, साधुरक्षण, द्रष्ट दलनत्व, धर्मज्ञ, निराभिमानी और पवित्रता जैसे ऐसे अनेक गुणों से प्रभु श्रीराम पूर्ण रूप से विकसित है।

हमारे मानव में, प्रभु में बसे हुये एक भी गुण आजाये तो हमारा मानव जन्म पूर्ण रूप से सार्थक बन जाता है, इसमें शंका की कोई बात ही नही। तो आइये सब प्रभु श्रीराम के गुणों का, चरित्र का, अनुसंधान करके राम जन्म महोत्सव मनाये और हमारी शरणागति का रास्ता तय करे।

जय श्रीराम

श्री किडाम्बि आच्चान्

- श्रीमती भवरी रघुनाथ रांदड

जन्म नक्षत्र - चित्रा, हस्त नक्षत्र

अवतार स्थल - कांचीपुरम्

आचार्य - श्रीरामानुजस्वामीजी

बचपन में आपका नाम ''प्रणतार्तिहरर्'' था। (देवराज अष्टकम में श्री कांचीपूर्ण स्वामीजी ने श्री वरदराज भगवान को बड़े सम्मान और प्यार से प्रणतार्तिहरर् कहके पुकारा)।

उनको श्रीरामानुजस्वामीजी के मुख्य रसोइया बनाया गया था। इस फैसले का निर्णय श्री गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी ने किया था। इस फैसले के पीछे एक दिलचस्प कहानी ''६००० पड़ी गुरु परंपरा प्रभाव'' और कुछ और पूर्वाचार्य ग्रंथों में लिखा गया है।

श्रीरामानुजस्वामीजी गद्यत्रय का अध्ययन किये और नित्य ग्रन्थ (तिरुवाराधन क्रम) भी लिखे। इस तरह वे इस श्रीवैष्णव संप्रदाय का पालन और पोषण किया। श्रीरामानुजस्वामीजी के समय में भी आज की तरह कुछ ऐसे लोग थे जो खुद लाभकारी काम नहीं करते और दूसरों को करने भी नहीं देते। ऐसे कुछ लोग श्रीरंगम् में थे जो श्रीरामानुजस्वामीजी के विचारों से सहमत नहीं थे। वे व्याकुल पड़े और ऐसी एक अकल्पनीय और दुष्ट कार्य किया जिससे श्रीरामानुजस्वामीजी की जान खतरे में पड़ी।

उन्होंने खाने में जहर मिलाकर उसे भिक्षा के रूप में श्रीरामानुजस्वामीजी को देने की योजना बनाई। श्रीरामानुजस्वामीजी हर एक घर में, हमेशा की तरह, उस दिन भी भिक्षा माँगते आये और उस घर के सामने आ खड़े जिस घर की महिला के हाथ में वो दूषित आहार था। श्रीरामानुजस्वामीजी उस आहार को स्वीकार कर निकल ही पड़े की उस औरत के आंखों में आँसू आ गये। वो श्रीरामानुजस्वामीजी को सूक्ष्म रूप से यह संदेश देना चाहती थी कि वे उस दुष्ट आहार को न छूए। वो अपने पति की इस साजिश का हिस्सा बनना नहीं चाहती थी। वो अपनी भिक्षा को स्वामी के अन्य भिक्षा से अलग किया और अपने चेहरे में अत्यंत दुःख की भावना दिखाई। श्रीरामानुजस्वामीजी को दण्डवत प्रणाम करने के बाद भारी मन से घर वापस लौटी। श्रीरामानुजस्वामीजी को समझ में आ गया की उस भिक्षा में कुछ गलत है। वे उसे

वार्षिक तिरुनक्षत्र (१८.०४.२०१९) के संदर्भ में...

कावेरी नदी में बहा दिया और उस दिन से कठिन व्रत का पालन करने लगे।

श्री गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी इस घटना के बारे में सुनते ही तुरंत श्रीरंगम् आ पहुँचे। श्रीरामानुजस्वामीजी अपने आचार्य का स्वागत करने गर्म धूप में कावेरी नदी के किनारे शिष्य-सहित पधारे। अपने आचार्य को देखते ही श्रीरामानुजस्वामीजी ने दंडवत प्रणाम करते हुए उस अत्यधिक गर्म रेत पर अपने आचार्य की आज्ञा की इंतजार करते लेटे थे। (हमारी संप्रदाय का एक और विशेष क्रम है कि एक शिष्य, अपने आचार्य को दंडवत प्रणाम करते समय, तभी उठे जब आचार्य कहे)। श्री गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी ने कुछ समय की देरी की, यह जानने के लिए कि कौन श्रीरामानुजस्वामीजी की इस दिव्यमंगल रूप की ओर तरसता है और इसी से स्वामी की शुभचिंतक की जानकारी भी हो जाएगी।

किडाम्बि आच्चान् तड़प ऊठे और श्रीरामानुजस्वामीजी को तुरंत उठाया और श्री गोष्ठीपूर्ण स्वामीजी से पूछा ''यह कैसा अजीब नियम है? श्रीरामानुजस्वामीजी को इस गर्म धूप में इतनी देर लेटे रहने दिया आपने? इस कोमल फूल की यह क्या कठोर परीक्षा कर रहे हैं आप?'' किडाम्बि आच्चान की इस फिकर और विनम्रता से प्रसन्न होकर नम्बि विज्ञापन किये ''तुम ही हो जो श्रीरामानुजस्वामीजी से अत्यधिक प्रेम करते हो। तुम ही उसके शुभचिंतक हो। आज से तुम्हे रामानुज की भिक्षा की जिम्मेदारी सौंपा जाए।'' किडाम्बि आच्चान् स्वयं को सौभाग्यशाली मानकर उसी दिन से अपने कर्तव्य का पालन किया।

हमारे व्याख्यानों में ऐसे कुछ कथाएँ हैं जो स्वामी किडाम्बि आच्चान् के यश और महिमा के बारे में प्रकाश डालते हैं। उनमें से कुछ उदाहरण नीचे देखेंगे-

१. तिरुप्पावै २३ - पेरियवाच्चान पिळ्ळै व्याख्यान - इस पाशुर के द्वारा आण्डाल गोपियों और कृष्ण परमात्मा के मध्य हुयी सम्भाषण के बारे में बताती हैं। गोपिका स्त्री श्रीकृष्ण से कहती हैं कि उनका कोई आश्रय नहीं है। यह साबित करने के लिए कि उनको श्रीकृष्ण के चरण कमल ही एकमात्र चरण शरण है, एक घटना सुनाया गया। एक बार स्वामी किडाम्बि आच्चान् तिरुमालिरुंचोलै में भगवान अयगर के दर्शन करने निकल पड़े। भगवान अयगर उनको आदेश दिया कि वे कुछ पाठ सुनाये। स्वामी किडाम्बि आच्चान् ''अपराध सहस्रा भाजनम्... अगतिम...'' सुनान प्रारम्भ किये। तब भगवान अयगर, नम्बि से कहा की ''जब श्रीरामानुजस्वामीजी के चरणों में आत्मसमर्पण किया है तो स्वयं को अगतिम कैसे पुकार सकते हो?''

२. तिरुविरुत्तम ९९ - श्री पेरियवाच्चान पिळ्ळै व्याख्यान - इसमें एक कहानी के जरिये, श्री कूरेश स्वामीजी की महिमा प्रकाशित की जाती है। एक बार किडाम्बि आच्चान् श्री कूरेश स्वामीजी की उपन्यास सुनकर देर से लौटे। श्रीरामानुजस्वामीजी ने पूछा तो बताया कि श्री कूरेश स्वामीजी की कथा सुनते देर हो गई। श्रीरामानुजस्वामीजी फिर प्रश्न किये कि कालक्षेप किस पाशुर का था। आच्चान् ने उत्तर दिया कि ''पिरन्दवारुं वलरंतवारुं व्याख्यखण्ड'' पर कालक्षेप हो रहा था। श्रीरामानुजस्वामीजी विवरण से पूछे तो आच्चान् ने कहा ''श्री कूरेश स्वामीजी पहले उस अनुच्छेद को पड़े, उस अनुच्छेद के तात्पर्य का विश्लेषण करने लगे और जैसे ही करते रहे उनका दिल पिघलने लगा और

श्री कूरेश स्वामीजी शोक में डूब गए। श्री कूरेश स्वामीजी कहने लगे कि श्री शठकोप स्वामीजी बड़े ही अनोखे थे, उनका अनुभव भी कितना अनोखा, अद्भुत और दिव्य था। भगवान से बिछडके, वे जो विरह में जल रहे थे, उसे ना कोई समझ सकता है और ना ही कोई वर्णन कर सकता है। यह कहकर श्री कूरेश स्वामीजी कालक्षेप की अंत कर दी। इसे सुनकर श्रीरामानुजस्वामीजी अत्यंत खुश हुए और श्री कूरेश स्वामीजी की शुद्ध हृदय और उनकी भक्ति की प्रशंसा किये।

३. श्री सहस्रगीति पर श्री कलिवैरिदास स्वामीजी कि ईडु व्याख्यान - श्री शठकोप स्वामीजी निरन्तर भगवान की सोच में निरत रहते हैं। कैंकर्य प्राप्ति होते ही भगवान की कारुण्यता से अभिभूत हो जाते हैं। श्री शठकोप स्वामीजी के दिव्य भावनाओं को स्थापित करते हुए एक कहानी है जिसे हम अब देखेंगे। एक बार तदियारादन के समय किडाम्बि आच्चान् सभी श्रीवैष्णवों को जल पिलाने का कैंकर्य कर रहे थे। (उन दिनों, हर एक श्रीवैष्णव के मुंह में सीधा पानी पिलाते थे, आज की तरह हर एक को अलग अलग गिलास दिया नहीं जाता था) गोष्टी में से एक श्रीवैष्णव जब जल मांगते, तो उस श्रीवैष्णव को बाजु से जल पिला रहे थे। इसे देख श्रीरामानुजस्वामीजी ने आच्चान् को समझाया कि सामने से जल पिलाते हैं, बगल में नहीं ताकि उस श्रीवैष्णव महान को तकलीफ ना पहुँचे। श्रीरामानुजस्वामीजी के काल में भागवत कैंकर्य को इतनी महत्व दी जाती थी। इसे सुनकर आच्चान् अति आनन्दित हुए और श्रीरामानुजस्वामीजी को धन्यवाद दिया और श्री शठकोप स्वामीजी के शब्दों से उनकी प्रशंसा ऐसे करने लगे- मैं उन श्री शठकोप स्वामीजी से कृतज्ञ हूँ जो मेरे जैसे अनुपयुक्त को भी भागवत कैंकर्य में उपयोग किये।

४. श्री सहस्रगीति पर श्री कलिवैरिदास स्वामीजी कि ईडु व्याख्यान - श्री शठकोप स्वामीजी निरन्तर दिव्यदेशों कि सौन्दर्यता की प्रशंसा करते रहते थे। उनका मानना था कि मनुष्य को नेत्र भगवान के इस सुन्दर दिव्यदेश को देख और इनकी सुंदरता पर मोहित होने के लिए दिये हैं। किडाम्बि आच्चान् और दाशरथि स्वामीजी एक बार अप्पकुड़थ्थान मंदिर की सुंदरता में डूब गए थे।

इस प्रकार स्वामी किडाम्बि आच्चान् के जीवन की झलक हमें मिली। वे पूरी तरह से भागवत कैंकर्य और निष्ठा में तल्लीन थे और श्रीरामानुजस्वामीजी के प्रिय शिष्यों में से एक थे।

किडाम्बि आच्चान् तनियन

रामानुज पदाम्भोजयुगली यस्य धीमतः।
प्राप्यम् च प्रापकम् वन्दे प्रनथार्थीहरम गुरुम्।।

तिरुमल में निषेधित कार्य

- तिरुमल में धूम्रपान, शराब, मांसाहार आदि निषेधित है।
- अन्य मतों का प्रचार न करें।
- पशु, पक्षी का वध निषेधित है।
- तिरुमल में जुआ, पासा आदि को खेलना या अन्य खेलों में धन को बाजी लगाना निषेधित है।
- भिखमंगों का प्रोत्साहन न करें।

श्री अनंताल्वान स्वामीजी

- श्री चंद्रकांत घनश्याम लहोटी

तिरुनक्षत्र - चित्रा नक्षत्र, चैत्र मास

अवतार स्थल - सिरुपुत्तुर/किरङ्गनूर (बेंगलूरु-मैसूर मार्ग में)

आचार्य - श्री देवराज मुनि स्वामीजी

परमपद प्रस्थान प्रदेश - तिरुमल (तिरुपति)

रचनाएँ - वेंकटेश इतिहास माला, गोदा चतुश्लोकि, रामानुज चतुश्लोकि

श्रीरामानुजस्वामीजी की कीर्ति और वैभव के बारे में सुनकर अनंताल्वान जो अनन्ताचार्य, अनन्त सूरि आदि नामों से प्रख्यात हैं। वे श्रीरामानुजस्वामीजी के चरण कमलों में आश्रय लेने की अपनी इच्छा को प्रकट किये। श्रीरामानुजस्वामीजी, अनन्ताल्वान को श्री देवराज मुनि स्वामीजी के शिष्य बनने का निर्देश दिये। वे सभी प्रसन्नता से उसे स्वीकार करते हैं और अत्यन्त आनन्द से उनके निर्देश का अनुसरण करते हैं। श्री देवराज मुनि स्वामीजी उनसे कहते हैं कि वे उनके शिष्य होने पर भी केवल श्रीरामानुजस्वामीजी के दिव्य चरणारविंदों के ही आश्रय करें। तिरुमल में श्रीरामानुजस्वामीजी के दिव्य चरण कमलों को अनन्ताळवान कहा जाता है। अनन्ताळवान निम्न विषयों में श्री मधुरकवि स्वामीजी के समान थे।

- दोनों के तिरुनक्षत्र चित्रा, चैत्र मास था।
- वे दोनों ही पूर्णतः आचार्य निष्ठा में निरत थे - श्री मधुरकवि स्वामीजी सदा श्री शठकोप स्वामीजी के दिव्य

वार्षिक तिरुनक्षत्र (१९.४.२०१९) के संदर्भ में...

चरणों के ही ध्यान में रहते थे और श्री अनन्ताळवान स्वामीजी निरंतर श्रीरामानुजस्वामीजी के चरण कमलों का ही चिन्तन किया करते थे।

तद्पश्चात् श्री सहस्रगीति के मधुर पाशुरों पर व्याख्यान देते हुए, श्रीरामानुजस्वामीजी समझाना प्रारंभ करते हैं जहाँ श्री शठकोप स्वामीजी वेंकटेश भगवान के प्रति शुद्ध और सतत कैंकर्य करने की अपनी उत्कृष्ट अभिलाषा प्रकट करते हैं। उस पद में आल्वार, तिरुवेंगडमुडैयान की ताजे और प्रचुर मात्रा में पुष्पों की अभिलाषा को दर्शाते हैं। श्रीरामानुजस्वामीजी, आल्वार के इस दिव्य मनोरथ का चिंतन करते हुए, अपनी सभा के समक्ष एक प्रश्न रखते हैं ''क्या कोई है जो तिरुमल जाकर, एक सुंदर बगीचा बनाकर, प्रतिदिन भगवान की सुंदर पुष्पों से सेवा करेगा।'' श्री अनंताल्वान स्वामीजी तुरंत उठकर कहते हैं कि वे आल्वार और श्रीरामानुजस्वामीजी की मनोरथ पूर्ण करेंगे। श्रीरामानुजस्वामीजी अति प्रसन्न होते हैं और अनंताल्वान तुरंत तिरुमल के लिए प्रस्थान करते हैं। प्रथम वे तिरुवेंगडमुडैयान (भगवान वेंकटेश्वर) का मंगलाशासन करते हैं, बगीचे का निर्माण करते हैं और उसका नाम ''इरामानुसन्'' रखकर प्रतिदिन ताजे पुष्पों से भगवान का कैंकर्य प्रारंभ करते हैं। यह सुनकर श्रीरामानुजस्वामीजी

निर्णय करते हैं कि वे तिरुमल जाकर बगीचे का दर्शन करेंगे। वे तीव्रता से अपने श्री सहस्रगीति कालक्षेप (व्याख्यान) को पूर्ण करते हैं और तिरुमल की ओर प्रस्थान करते हैं।

वे कांचीपुरम् मार्ग से होते हुए (श्री वरदराज भगवान और श्री कांचीपूर्ण स्वामीजी का मंगलाशासन करते हुए) तिरुपति पहुँचते हैं। अनंताल्वान अन्य श्रीवैष्णवों के साथ तल पर आकर श्रीरामानुजस्वामीजी का स्वागत करते हैं। श्रीरामानुजस्वामीजी पहले तो तिरुमल पर्वत पर चढ़ाई करने से यह कहते हुए मना कर देते हैं कि तिरुवेंकट पर्वत स्वयं आदिशेष का अवतार रूप है। परंतु अपने शिष्यों के बारम्बार यह प्रार्थना किये जाने पर कि यदि श्रीरामानुजस्वामीजी चढ़ाई नहीं करेंगे तो वे भी चढ़ाई कैसे कर सकते हैं, श्रीरामानुजस्वामीजी सहमती देते हैं और अत्यंत श्रद्धा के साथ पर्वत पर चढ़ाई करते हैं। श्री शैलपूर्ण स्वामीजी स्वयं तिरुमल के प्रवेशद्वार पर आते हैं और श्रीरामानुजस्वामीजी का स्वागत करते हैं। फिर श्रीरामानुजस्वामीजी ''इरामानुसन्'' बगीचे में जाते हैं और वहाँ पुष्पों के विविध प्रकारों को देखकर अति प्रसन्न होते हैं। श्री परकाल स्वामीजी द्वारा कहा गया है ''वलर्थतदनाल पयन पेट्रेन्'' (परकाल नायकी उद्घोषणा करती है कि वे अपने प्रिय तोते की देखभाल करके बहुत प्रसन्न है क्योंकि तोता हर क्षण भगवान के नाम/चरित्र को दोहराता है), श्रीरामानुजस्वामीजी भी अनंताल्वान की अत्यंत निष्ठा से बहुत प्रसन्न थे।

एक बार जब अनंताल्वान और उनकी गर्भवती पत्नी, बगीचे में एक तालाब बनाने के लिए कार्य कर रहे थे, भगवान स्वयं एक छोटे बालक के रूप में प्रकट होकर उनकी सहायता करने की प्रयास करते हैं। क्योंकि अनंताल्वान अपने आचार्य के आदेश को स्वयं पूरा करना चाहते थे और इसलिए वे उस बालक की सहायता लेने से मना कर देते हैं। परंतु अनंताल्वान की पत्नी उनकी अनुपस्थिति में उस बालक की सहायता स्वीकार कर लेती है। उसे जानकार अनंताल्वान बहुत क्रोधित होते हैं और वे उस बालक का पीछा करते हैं और अंतः अपनी छड़ी उस पर फेंकते हैं। वह छड़ी उस बालक के ठोड़ी पर लगती है परंतु वह बालक मंदिर में पहुँचकर अदृश्य हो जाता है। मंदिर में स्वयं तिरुवेंगडमुडैयान (भगवान वेंकटेश्वर) की ठोड़ी पर चोट के निशान दिखाई देता है और इसीलिए आज भी तिरुवेंगडमुडैयान की ठोड़ी पर घाव को शीतल करने के लिए पचई कर्पूरं (कपूर) लगाया जाता है।

एक बार अनंताल्वान को सांप ने काट लिया। जब उनके सहयोगी इस बात पर चिंतित होते हैं, वे सरलता से कहते हैं कि यदि सांप अधिक शक्तिशाली है, तो मैं यह शरीर त्यागकर, विरजा नदी में नहाकर परमपद में भगवान की सेवा करूँगा। और यदि मेरा शरीर अधिक शक्तिशाली है, तो मैं यही तिरुवेंकटाचल में पुष्करिणी में नहाकर अपना कैंकर्य ज़ारी रखूँगा। उन्हें कैंकर्य इतना प्रिय था कि वे अपने शरीर का किंचित मात्र भी ध्यान नहीं रखते थे।

एक बार अनंताल्वान तिरुवेंकटाचल से प्रसाद का एक झोला, यात्रा करते हुए समीप के गाँव में ले जाते हैं। जब वे उसे खोलते हैं, वे उसमें कुछ चीटियों को देखते हैं, वे तुरंत अपने शिष्यों को निर्देश देते हैं कि उन चीटियों को पर्वत पर पुनः छोड़ आये। वे कहते हैं ''क्योंकि श्री कुलशेखर स्वामीजी ने उद्घोषणा की है कि वे (और भगवान के अन्य भक्तगण) तिरुमल में निवास करने के लिए कोई भी रूप धारण कर सकते हैं, यह (चींटी) वही हो सकते हैं इसलिए हमें तिरुवेंकटाचल में इनके जीवन में बाधा नहीं डालनी चाहिए।''

एक बार जब अनंताल्वान एक माला बना रहे थे, तब भगवान वेंकटेश उन्हें अपनी सन्निधि में बुलाने के लिए किसी को भेजते हैं। अनंताल्वान अपने माला बनाने का कैंकर्य संपन्न करने के पश्चात् वहाँ विलंब से पहुँचते हैं। भगवान पूछते हैं ''आपको विलंब कैसे हो गया?'' तब श्री अनंताल्वान कहते हैं ''जबकि पुष्प खिल रहे थे, मैं माला पिरोना चाहता था, श्रीरामानुजस्वामीजी के दिए आदेश के फलस्वरूप अपने कैंकर्य के अतिरिक्त इस सन्निधि में करने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है।'' भगवान पूछते हैं, ''यदि मैं आपको इस स्थान से जाने के लिए कहूँ, तब? इस पर अनंताल्वान कहते हैं ''आप मुझसे थोड़े ही पहले तिरुमल में पधारे और मैं तो अपने आचार्य के आदेश पर यहाँ आया हूँ। आप मुझे जाने के लिए कैसे कह सकते है?'' भगवान अनंताल्वान की महान आचार्य निष्ठा देखकर बहुत प्रसन्न होते हैं।

अनंताल्वान के निर्देश और महिमा को व्याख्यान में अनेक स्थानों पर दर्शाया गया है। अब हम उनमें से कुछ यहाँ देखते हैं।

• पेरियाल्वार तिरुमोळि- श्री वरवरमुनि स्वामीजी व्याख्यान - इस पाशुर में आल्वार तिरुक्कोष्टियूर के श्रीवैष्णवों की बढ़ाई करते हुए कहते हैं कि वे अपने आचार्य के प्रिय वचनों के अतिरिक्त और कोई वचन नहीं कहेंगे। इस संबंध में मामुनिगल, अनंताल्वान की श्री पराशर भट्टर स्वामीजी के प्रति प्रीति को दर्शाते हैं। अपने अंतिम दिनों में, श्री अनंताल्वान स्वामीजी किसी श्रीवैष्णव से पूछते हैं कि श्री पराशर भट्टर को कौन सा नाम अति प्रिय है। वे कहते हैं कि भट्टर को श्रीरंगनाथ भगवान के ''अलगिय मणवालन'' नाम के प्रति अत्यंत प्रीति है। अनंताल्वान फिर कहते हैं ''हालंकि पति का नाम उच्चारण करना उचित शिष्टाचार नहीं है, परंतु क्योंकि भट्टर को यह नाम प्रिय है तब मैं वही कहूँगा।'' और ''अलगिय मणवालन'' कहते हुए वे परमपद की ओर प्रस्थान करते हैं। हालंकि अनंताल्वान परमपद जाने से पहले श्रीरामानुजस्वामीजी का नाम कहना चाहते थे, परंतु जब उन्हें श्री पराशर भट्टर स्वामीजी की ''अलगिय मणवालन'' के प्रति प्रीति के बारे में सुना, उन्होंने वही नाम लिया।

• पेरुमाल तिरुमोळि ४.१० - श्री पेरियवाच्चान पिळ्ळै व्याख्यान - इस पद में, श्री कुलशेखर स्वामीजी तिरुवेंकटेश्वर के प्रति अपना महान लगाव प्रदर्शित करते हैं। वे कहते हैं कि वे तिरुमल दिव्य पर्वत पर किसी भी रूप में निवास करना चाहते हैं। श्री अनंताल्वान स्वामीजी समझाते हैं कि तिरुमल दिव्य पर्वत से संबंध प्राप्त करने के लिए उन्हें स्वयं श्री वेंकटेश भगवान भी होना पड़े तो उन्हे आपत्ति नहीं।

• श्री सहस्रगीति ६.७.१ - श्री कलिवैरिदास स्वामीजी ईडु व्याख्यान - इस पद में, श्री शठकोप स्वामीजी, वैतमानिधि भगवान और तिरुक्कोलुर

दिव्यदेश के प्रति अपनी महान प्रीति दर्शाते हैं। श्री कलिवैरिदास स्वामीजी एक घटना बताते हैं जहाँ श्री अनंताल्वान स्वामीजी अपने दिव्यदेश में रहकर वहीं पर भगवान की सेवा करने के महत्व को समझाते हैं। एक बार श्री अनंताल्वान स्वामीजी एक श्रीवैष्णव से भेंट करते हैं जो चोला कुलान्तकन नामक एक गाँव में रहते थे और कृषि करते थे। वे उनसे पूछते हैं कि वे कहाँ से हैं, तो वह श्रीवैष्णव बताते कि वे तिरुक्कोलुर से आये हैं। श्री अनंताल्वान स्वामीजी फिर उनसे पूछते हैं कि आपने अपना पैतृक स्थान क्यों छोड़ा? वह श्रीवैष्णव कहते हैं कि वे वहाँ कोई भी श्रम प्राप्त करने में असमर्थ थे इसलिये उन्होंने वह स्थान छोड़ दिया। उसके लिए, श्री अनंताल्वान स्वामीजी कहते हैं, इस गाँव में आकर कृषि करने के स्थान पर आप तिरुक्कोलुर, जो भगवान और श्री शठकोप स्वामीजी दोनों को ही प्रिय हैं, वहाँ रहकर गधों को चरा कर धन अर्जित कर सकते थे और वहाँ रहते हुए उनकी सेवा भी कर सकते थे। वे दर्शाते हैं कि जीवात्मा के लिए इस संसार में, श्रीवैष्णवों के साथ दिव्यदेश में रहते हुए कैंकर्य करना सबसे उत्तम है।

• श्री सहस्रगीति - श्री कलिवैरिदास स्वामीजी ईडु व्याख्यान - के पाशुर में, श्री शठकोप स्वामीजी भगवान के लिए कहते है ''एन तिरुमगल सेर मारबन'' अर्थात् भगवान, श्री महालक्ष्मीजी को धारण करते हैं। आल्वार के इन दिव्य वचनों के प्रति अत्यंत प्रीति दर्शाते हुए अनंताल्वान ने अपनी पुत्री का नाम ''एन तिरुमगल'' रखा।

• वार्तामाला - ३४५ - एक बार भट्टर अपने एक शिष्य को यह जानने के लिए कि एक श्रीवैष्णव को किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए, अनंताल्वान के पास भेजते हैं। वे अनंताल्वान के निवास पर तदियाराधन के समय पहुँचते हैं। क्योंकि वह स्थान पूर्ण भरा हुआ था, वे सभी के प्रसाद पाने तक रुकते हैं। अनंताल्वान उन्हें देखते हैं और उन्हें अंत में अपने साथ प्रसाद पाने के लिए आमंत्रित करते हैं। अनंताल्वान उस श्रीवैष्णव से उनके बारे में पूछते हैं तब वह कहते हैं कि वे भट्टर के शिष्य हैं और भट्टर ने उन्हें यहाँ यह जानने के लिए भेजा है कि एक श्रीवैष्णव को कैसा होना चाहिए। अनंताल्वान कहते हैं ''एक श्रीवैष्णव को सारस, मुर्गी, नमक और आपके समान होना चाहिए।''

• सारस सबसे उत्तम मछली की खोज करता है और सिर्फ उसे ही चुनता है। उसी प्रकार, श्रीवैष्णवों को हर समय भगवान की ओर समर्पित रहना चाहिए और भागवत कैंकर्य, जो सबसे उत्तम वरदान स्वरूप है, उसे स्वीकार करना चाहिए।

• मुर्गी मिट्टी को अलग करके चावल के दानों को चुनती है। उसी प्रकार, श्रीवैष्णवों को शास्त्र (जिसमें विभिन्न लोगों के लिए विभिन्न वस्तुओं का वर्णन है) को खोजकर केवल बहुमूल्य सिद्धांतों जैसे परगत स्वीकार्य, भागवत कैंकर्य आदि को ही चुनना चाहिए और उनका अनुसरण करना चाहिए।

• नमक खाद्य पदार्थ के साथ सूक्ष्मता से मिल जाता है और उसे स्वादिष्ट बनाता है। और नमक के अभाव को भी सुगमता से समझा जा सकता है। उसी प्रकार, श्रीवैष्णवों को अपना अहंकार त्यागकर अपनी उपस्थिति से अन्य श्रीवैष्णवों के जीवन में आनंद लाना चाहिए। और उन्हें इस प्रकार से व्यवहार करना चाहिए कि उनकी अनुपस्थिति में सभी उनके द्वारा किये गए अच्छे कार्यों को याद करें।

आज भी भगवान वेंकटेश द्वारा श्री अनंताल्वान स्वामीजी का सम्मान किया जाता है। उनके अवतार दिवस (चैत्र, चित्रा) और तीर्थदिवस/परमपदगमन दिवस (पूर्व फाल्गुनी) दोनों पर, तिरुवेंगडमुडैयान अनंताल्वान के बाग में जाते है और बकुल पेड़ को (जिसके नीचे अनंताल्वान के दिव्य शरीर का अंतिम संस्कार किया गया था) अपनी माला और श्री शठकोप को प्रदान करते हैं।

श्री अनंताल्वान स्वामीजी की तनियन

मेषे चित्रा समुद्भूतं यतिराज पदाश्रितं।
श्रीवेंकटेश सद्भक्तं अनंतार्यमहं भजे।।

माता यशोदा

- श्रीमती प्रीति ज्योतीन्द्र अजवालिया

इस लेख में आज हम माता यशोदाजी के बारे में अनुसंधान करेंगे। वसुश्रेष्ठ द्रोण ने पद्मयोनि ब्रह्म से यह प्रार्थना की 'देव! जब मैं पृथ्वी पर जन्म धारण करूँ तो विश्वेश्वर स्वयं भगवान श्रीहरि श्रीकृष्णचन्द्र में मेरी परम भक्ति हो।' इस प्रार्थना के समय द्रोणपत्नी धरा भी वही खडी थी। धरा ने मुख से कुछ नही कहा; पर उनके अणु-अणु में भी यही अभिलाषा थी, मन ही मन धरा भी पद्मयोनि से यही माँग रही थी। पद्मयोनि ने कहा- 'तथास्तु-ऐसा ही होगा।' इसी वर के प्रताप से धरा ने ब्रजमण्डल के एक समुख नामक गोप एवं उनकी पत्नी पाटलाकी कन्या के रूप में भारतवर्ष में जन्म धारण किया- उस समय जब कि स्वयं भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के अवतरण का समझ हो चला था, श्वेतवराहकल्प की अठ्ठाईसवी चतुर्युगी के द्वापर का अंत हो रहा था। पाटलाने अपनी कन्या का नाम यशोदा रखा। यशोदा का विवाह व्रजराज नन्द से हुआ। ये नंद पूर्वजन्म में वही द्रोण नामक वसु थे, जिन्हें ब्रह्म ने वर दिया था।

इन्ही यशोदा के पुत्र के रूप में आनन्दकन्द परब्रह्म पुरुषोत्तम स्वयं भगवान श्रीकृष्णचन्द्र अवतीर्ण हुए। यशोदा को पुत्र हुआ है, इस आनन्द में सारा व्रजपुर निमग्न हो गया।

छठे दिन यशोदा ने अपने पुत्र की छठी पूजी। इसके दूसरे दिन कंस प्रेरित पूतना यशोदानन्दन को मारने आयी। अपना विषपूरित स्तन यशोदानन्दन के मुख में दे दिया, किंतु यशोदानन्दन विषमय दूध के साथ ही पूतना के प्राणों को भी पी गये। शरीर छोडते समय श्रीकृष्णचन्द्र को लेकर ही पूतना मधुपुरी की ओर दौडी। आह! उस क्षण यशोदा के प्राण भी मानो पूतना के पीछे-पीछे दौड चले। यशोदा के प्राण तभी लौटे, तभी उनके जीवन का संचार हुआ, जब पुत्र को लाकर गोपसुन्दरियों ने उनके, वक्षःस्थल पर रखा। यशोदा ने स्नेहवश उस समय परमात्मा श्रीकृष्ण पर गो-पुच्छ फिराकर उनकी मंगल-कामना की। क्रमशः यशोदानन्दन बढ रहे थे एवं उसी क्रम से मैया का आनन्द भी प्रतिक्षण

बढ रहा था। श्रीकृष्णचन्द्र आज इक्यासी दिन के हो गये, आज मैया अपने पुत्र को एक विशाल शकट के नीचे पलने पर सुला आयी थी। इसी समय कंस प्रेरित उत्कच नामक दैत्य आया, उस गाडी में प्रविष्ट हो गया, शकट को यशोदानन्दन पर गिरा कर वह उनको पीस डालना चाहता था। पर इससे पूर्व ही यशोदनन्दन ने अपने पैर से शकट को उलट दिया। इधर जब जननी ने शकट-पतन का भयंकर शब्द सुना तो ये सोच बैठी कि मेरा लाल तो अब जीवित रहा नही। बस, ढाढ मारकर एक बार चीत्कार कर उठी और किफ सर्वथा प्राणशून्य-सी होकर गिर पडी। कठिनता से गोपसुन्दरियाँ उनकी मूर्च्छा तोडने में सफल हुई।

जननी का मनोरथ पूर्ण करते हुए क्रमशः श्रीकृष्णचन्द्र बोलने भी लगे, धुटरुँ भी चलने लगे और फिर खडे होकर भी चलने लगे। इतने में वर्ष पूरा हो गया, यशोदारानी ने अपने पुत्र की वर्षगाँठ मनायी। इसी समय कंस ने तृणावर्त दैत्य को भेजा। वह आया और यशोदा के नीलमणि को उठाकर आकाश में चला गया। यशोदा मृतावस्ता गौ की भाँति पृथ्वीपर गिर पडी। इस बार जननी के जीवन की आशा किसी को न थी, पर जब श्रीकृष्णचन्द्र तृणावर्त को पूर्ण-विचूर्णकर लौटे, गोपियाँ उन्हे दैत्य के छिन्न-भिन्न शरीर पर से उठा लायी तो तत्क्षण यशोदा के प्राण भी लौट आये।

देखते-देखते नीलमणि दो वर्ष दो महीने के हो गये। पर अब नीलमणि इतने चंचल हो गये थे कि यशोदा को एक क्षण भी चैन नही। गोपियों के घर जाकर तो न जाने कितने दही के भाँड कोड ही आया करते थे, एक दिन मैया का वह दही भाँड भी फोड दिया, जो उनके कुल में वर्षो से सुरक्षित चला आ रहा था। जननी ने डरा ने के उद्देश्य से श्रीकृष्णचन्द्र को ऊखल में बाँधा। इस बन्धन को निमित बनाकर यशोदा के नीलमणि ने दो अर्जुनवृक्षों को जड से उखाड दिया। फिर तो व्रजवासी यशोदानन्द की रक्षा के लिये अतिशय व्याकुल हो गये। पूतना से, शकट से, तृणावर्त से, वृष से - इतनी बार तो नारायण ने नीलमणि को बचा लिया; अब आगे यहाँ इस गोकुल में तो एक क्षण भी नही रहना चाहिए। गोपों ने परामर्श करके निश्चय कर लिया-बस, इसी क्षण वृन्दावन चले जाना है। यही हुआ, यशोदा अपने नीलमणि को लेकर वृन्दावन चली आयी।

वृन्दावन आने के पश्चात् श्रीकृष्णचन्द्र की अनेकों भुवनमोहिनी लीलाओं का प्रकाश हुआ। इन अवसरों पर यशोदा के हृदय में हर्ष अथवा दुःख की जो धाराएँ फूट निकलती थी, उनमें यशोदा स्वयं तो डूब ही जाती, इस प्रकार ग्यारह वर्ष छः महीने यशोदारानी के भवन को श्रीकृष्णचन्द्र आलोकित करते रहे, किंतु अब यह आलोक मधुपुरी जानेवाला था। श्रीकृष्णचन्द्र को मधुपुरी ले जाने के लिये अक्रूरजी ने आकर यशोदा के हृदय पर मानो अतिक्रूर वज्र गिरा गया। विदा होते समय यशोदारानी की जो करुण दशा थी, उसे देखकर कौन नही रो पडा। श्रीकृष्णचन्द्र के विरह में जननी यशोदा विक्षिप्त-सी हो गयी।

वे जड-चेतन, पशु-पक्षी, मनुष्य-जो कोई भी दृष्टि के सामने आ जाता, उसीसे वसुदेव पत्नी देवकी को अनेकों सन्देश भेजती। किसी पथिक ने यशोदा का सन्देश श्रीकृष्णचन्द्र से जाकर कह भी दिया। सान्त्वना देने के लिये श्रीकृष्णचन्द्र ने उद्धव को भेजा। उद्धव आये; पर जननी के आँसू, पोंछ नही सके। यशोदारानी का हृदय तो अब शीतल हुआ, जब वे कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्णचन्द्र से मिली। राम-श्याम को हृदय से लगाकर, गोद में बैठाकर उन्होंने नव-जीवन पाया। श्रीकृष्णचन्द्र अपनी लीला समेटनेवाले थे। इसीलिए अपनी जननी यशोदा को भी पहले से भेज दिया। जब भानुनन्दिनी गोलोक विहारिणी श्रीराधा किशोरी को वे विदा करने लगे तो गोलोक के उसी दिव्यातिदिव्य विमान पर जननी को भी बिठाया तथा राधाकिशोरी के साथ ही यशोदा अन्तर्धान हो गयीं, गोलोक में पधार गयी। ऐसी माँ जगतजननी माँ यशोदाजी को शत् शत् वंदन।

जय श्रीकृष्ण

श्री रामचरितमानस में धर्म-रथ की व्याख्या

- श्री कन्हैयालाल शर्मा

श्रीराम - रावण के युद्ध में, मेघनाद, कुम्भकरण आदि रावण के सभी वीर धाराशायी हो चुके थे। अब राम और रावण का भीषण संग्राम होने जा रहा था।

अब महाबली रावण अपनी समस्त सेना के साथ रथ पर बैठकर भगवान राम से युद्ध करने आया। रावण के रथ के चलने की भयंकर आवाज आ रही थी। गड़गड़ाहट से पृथ्वी कांप उठी। वानर योद्धा भयभीत हो उठे थे। विभीषण भी घबरा गया। वह राम से अतिशय स्नेह करता था, उनका भक्त था। जब स्नेह अधिक होता है तो उनकी सुरक्षा के लिए चिन्ता ज्यादा होती है।

चिन्ताग्रस्त विभीषण रामजी से कहता है - हे नाथ! रावण के पास इतना भव्य विजय रथ है, जिस पर बैठकर वह युद्ध करने आ रहा है। पर आप तो पैदल खड़े लड़ रहे है। रथ तो क्या - आपके पैरों में त्राण (चप्पल) तक नहीं है। ऐसे में आप रावण से कैसे लडेंगे, कैसे उसे परास्त करेंगे। क्योंकि यह माना जाता था कि जो रथ पर बैठकर लडता है, उसकी विजय होती है।

तब रामजी विभीषण के संशय को दूर करते हैं और समझाते हैं - धर्म-रथ की व्याख्या करते हैं। सुनो विभीषण जिस रथ के शौर्य (वीरता) और धीरज दो पहिये होते हैं, और सत्य तथा शील की दृढ़ ध्वजा पताका होती है। बल, विवेक, दम, परहित इस तरह के चार घोडे उस रथ में लगे हो और क्षमा, कृपा, समता की रज्जू रास (रस्सी) से जोडे गये हो।

ईश्वर का भजन उसका सुजान सारथी हो। वैराग्य जिसकी ढाल और संतोष जिसकी कृपाण होनी चाहिए। दान उसका परशु(फरसा) और बुद्धि प्रचण्ड शक्ति बाण है। वर - विज्ञान उसका कठिन धनुष हो। उसका त्रोण (तरकश) अचल और अमल (पवित्र) मन हो। उस त्रोण में सम, यम, नियम के तरह-तरह के तीर हो। गुरु और ब्राह्मणों की पूजा करना ही उसका कवच है। इसके सिवाय दूसरा कोई उपाय विजय का नहीं है।

हे सखा! ऐसा धर्म-रथ जिस वीर योद्धा के पास होता है, उसे कोई भी शत्रु जीत नहीं सकता। ऐसा रथ जिस वीर के पास है, वह संसार के अजेय शत्रु को जीत सकता है। (यह धर्म-रथ ऐसे ही वीर योद्धा का रूपक है, जिसमें उपरोक्त सभी गुण होने चाहिये)।

प्रभु के ऐसे वचन सुनकर विभीषण को धीरज और संतोष हो गया। वह प्रसन्न होकर श्रीराम के चरणों में झुकते हैं और कहते हैं, प्रभु इसी बहाने आपने मुझे इतना महान उपदेश दे दिया, मैं कृतार्थ हुआ। आप कृपा और सुख के पुंज है। अब मुझे कोई संशय नहीं है। इस तरह प्रभु श्रीराम ने विभीषण का संशय दूर किया।

तिरुमल तिरुपति देवस्थान

तिरुमल श्री वेंकटेश्वरस्वामीजी का वसंतोत्सव
दि. १७-०४-२०११ से दि. १९-०४-२०११ तक

तिरुमल तिरुपति देवस्थान

नागलापुरम्
श्री वेदवल्ली सहित
श्री वेदनारायणस्वामीजी का
ब्रह्मोत्सव
दि. १८-०४-२०११ से
दि. २७-०४-२०११ तक

तिरुमल तिरुपति देवस्थान

तिरुपति श्री कोदंडरामस्वामीजी का ब्रह्मोत्सव

दि. ०२-०४-२०११ से दि. ११-०४-२०११ तक

०२-०४-२०११
मंगलवार
दिन - ....
रात - सेनापति उत्सव,
अंकुरार्पण

०३-०४-२०११
बुधवार
दिन - ध्वजारोहण
रात - महाशेषवाहन

०४-०४-२०११
गुरुवार
दिन - लघुशेषवाहन
रात - हंसवाहन

०५-०४-२०११
शुक्रवार
दिन - सिंहवाहन
रात - मोतीवितानवाहन

०६-०४-२०११
शनिवार
दिन - कल्पवृक्षवाहन
रात - सर्वभूपालवाहन

०७-०४-२०११
रविवार
दिन - पालकी में मोहिनी अवतारोत्सव
रात - गरुडवाहन

०८-०४-२०११
सोमवार
दिन - हनुमद्वाहन
सायं - वसंतोत्सव
रात - गजवाहन

०९-०४-२०११
मंगलवार
दिन - सूर्यप्रभावाहन
रात - चंद्रप्रभावाहन

१०-०४-२०११
बुधवार
दिन - रथ-यात्रा
रात - अश्ववाहन

११-०४-२०११
गुरुवार
दिन - पालकी उत्सव,
चक्रस्नान
रात - ध्वजावरोहण

तिरुमल तिरुपति देवस्थान

वायल्पाडु (वाल्मीकिपुरम्)
श्री पट्टाभिरामस्वामीजी का
ब्रह्मोत्सव
दि. १०-०४-२०११ से
दि. १९-०४-२०११ तक

१०-०४-२०११
बुधवार
दिन - ....
रात - सेनापति उत्सव,
अंकुरार्पण

१२-०४-२०११
शुक्रवार
दिन - लघुशेषवाहन
रात - हंसवाहन

१४-०४-२०११
रविवार
दिन - कल्पवृक्षवाहन
रात - सर्वभूपालवाहन

१६-०४-२०११
मंगलवार
दिन - हनुमद्वाहन
सायं - वसंतोत्सव
रात - गजवाहन

१८-०४-२०११
गुरुवार
दिन - रथ-यात्रा
रात - अश्ववाहन

११-०४-२०११
गुरुवार
दिन - ध्वजारोहण
रात - ....

१३-०४-२०११
शनिवार
दिन - सिंहवाहन
रात - मोतीवितानवाहन

१५-०४-२०११
सोमवार
दिन - पालकी में मोहिनी अवतारोत्सव
रात - गरुडवाहन

१७-०४-२०११
बुधवार
दिन - सूर्यप्रभावाहन
रात - चंद्रप्रभावाहन

१९-०४-२०११
शुक्रवार
दिन - पालकी उत्सव,
चक्रस्नान
रात - ध्वजावरोहण

तिरुमल तिरुपति देवस्थान

ओंटिमिट्टा श्री कोदंडरामस्वामीजी का ब्रह्मोत्सव

दि. १२-०४-२०११ से दि. २१-०४-२०११ तक

१२-०४-२०११
शुक्रवार
दिन - न्यासाभिषेक
रात - अंकुरार्पण

१३-०४-२०११
शनिवार
दिन - ध्वजारोहण
रात - शेषवाहन

१४-०४-२०११
रविवार
दिन - वेणुगानालंकार
रात - हंसवाहन

१५-०४-२०११
सोमवार
दिन - वटपत्रशायी अलंकार
रात - सिंहवाहन

१६-०४-२०११
मंगलवार
दिन - नवनीतकृष्णालंकार
रात - हनुमत्सेवा

१७-०४-२०११
बुधवार
दिन - मोहिनी सेवा
रात - गरुडसेवा

१८-०४-२०११
शुक्रवार
दिन - शिवधनुर्भाणालंकार
रात - एदुर्कोलु,
कल्याणोत्सव,
गजवाहन

१९-०४-२०११
शुक्रवार
दिन - रथ-यात्रा
रात - ....

२०-०४-२०११
शनिवार
दिन - कालीयमर्दनालंकार
रात - अश्ववाहन

२१-०४-२०११
रविवार
दिन - चक्रस्नान
रात - ध्वजावरोहण

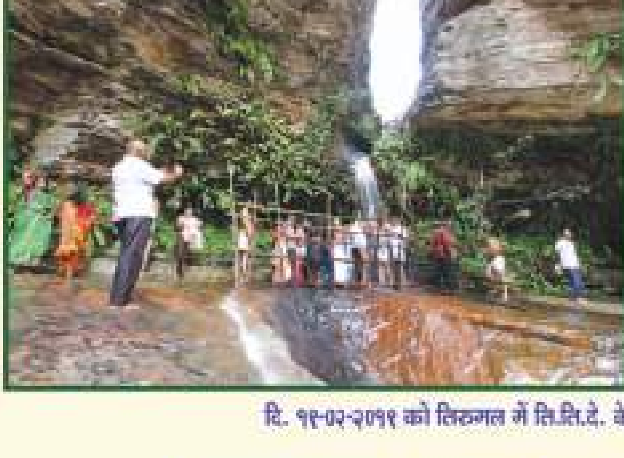

दि. १९-०२-२०११ को तिरुमल में ति.ति.दे. के द्वारा आयोजित कुमारधारतीर्थ मुक्कोटि दृश्य

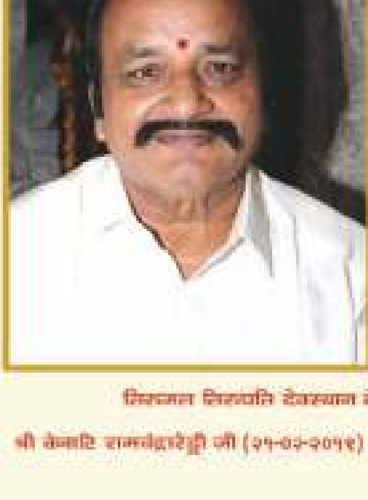

तिरुमल तिरुपति देवस्थान के न्यास-मंडली के सदस्यों के द्वारा प्रमाण स्वीकार

श्री केनाटि रामचंद्रारेड्डी जी (२१-०२-२०११)

श्री एस.प्रसाद बाबु जी (२२-०२-२०११)

ति.ति.दे. तिरुपति संयुक्त कार्यनिर्वहणाधिकारी
के रूप में काम करके, स्थानांतर हुए
श्री पोला भास्कर, आई.ए.एस. जी की विदाई

दि. १०-०२-२०११ को ति.ति.दे. नूतन
संयुक्त कार्यनिर्वहणाधिकारी (तिरुपति) के रूप में
कार्यभार स्वीकारते हुए श्री डी.लक्ष्मीकांतं, आई.ए.एस. जी

(गतांक से)

सियाराम ही उपाय

शरणागति मीमांसा

(पंचम खण्ड)

सियाराम ही उपेय

मूल लेखक
श्री सीतारामाचार्य स्वामीजी, अयोध्या

प्रेषक
दास कमलकिशोर हि तापडिया

८४

श्रीमते रामानुजाय नमः

जब महाप्रलय का वक्त आता है तो जैसे आप अन्तर्ध्यान हो जाते हैं उसी तरह अपने इच्छा से उस श्रीवैकुण्ठ लोक को भी अन्तर्ध्यान करा देते हैं। बाकी चौदह लोक महाप्रलय में नष्ट हो जाते हैं। क्योंकि ये सब चेतनों की कर्माधीन प्रकृति से रचे जाते हैं। प्रलय के समय में देवों के साथ ये सब लोक नष्ट हो जाते हैं। क्योंकि देव योनि भी कर्मों का ही फल है। जैसे श्रीमद्भागवत चतुर्थस्कन्ध में प्राचेतसों से शिवजी का वचन है-

स्वधर्म निष्ठः शत जन्मभिः पुमान् विरञ्चितामेति ततः परं हिमाम्॥

याने सौ जन्म पर्यन्त जो अविछिन्न ब्रह्मचर्य धर्म को निर्वाह देता है वह ब्रह्म होता है। उससे भी और ज्यादा धर्म निर्वाहता है तो शिव पदवी को पाता है और जो कोई सौ अश्वमेध को पूरा कर लेता है वह इन्द्र पदवी को पाता है। इस ब्रह्माण्ड में भी बहुत सृष्टि हैं। कोई रज-वीर्ज से होती है, कोई अत्यन्त गर्मी पड़ने से उष्णता के अंश मात्र ही से होती है, कोई अण्डे से होती है, कोई पृथ्वी से होती है। चाहे जिस तरह से भी इस चौदह लोक में प्रगट हो वह स्थूल या सूक्ष्म प्रकृति से ही शरीर पाता है। श्री भगवत्संकल्पानुकूल एक परमात्मा के अतिरिक्त चौदह लोक के महाप्रलय में कोई चीज नष्ट हुए बिना बँचती नहीं। कहने का सारांश यह हुआ कि ब्रह्मलोक के ऊपर जो श्रीवैकुण्ठ है इसमें तो इस प्राकृत शरीर से भी कोई-कोई चले जाते हैं। इस वैकुण्ठ को भी आविर्भाव तिरोभाव हो जाने के कारण नित्य वैकुण्ठ नहीं कह सकते हैं। नित्य तो वही परम धाम है जो श्री बिरजा नदी के पार है वहाँ वही जाता है कि जो सद्गुरु के परम अनुग्रह का पात्र होकर सत्संग के द्वारा इस संसार का महा भद्दा स्वरूप समझ कर और चौदह लोकों के सुखों को नाशवन्त समझ कर कब इससे छूट जाऊँ, ऐसी घबड़ाहट में पड़कर बाकी उपायों को अनेक झंझटों से भरा जान कर उस दिव्य धाम में जाकर नित्य श्री भगवान की सेवा मिलने के लिये भगवत्कृपा के सिवा सीधा और सच्चा कोई भी दूसरा उपाय नहीं है। यह सद्गुरु के द्वारा खूब समझ कर इस बात पर दृढ़ाध्यवसाय पूर्वक उपायान्तरों को त्याग कर, जिन्दगी भर श्रीहरि की श्रीकृपा के भरोसे समय बिता कर, सब शास्त्रों का निचोड़ जो श्री भगवान की कृपा है, उसको खूब समझा कर उस परिस्थिति करा देने वाले तथा उपायान्तरों को समझा कर उसको अति पारतन्त्र रूप जो स्वस्वरूप है उससे विरुद्ध तथा अत्यन्त कठिन बताकर उससे चित्त हटा देने वाले अचूक उपाय जो श्रीहरि की निर्हेतुक कृपा है उस पर दृढ़ परिस्थिति करा देने वाले सद्गुरु के परम उपकारों को स्मरण करता हुआ, निष्कपट शक्ति अनुसार उनकी सेवा करता हुआ, अन्त तक समय बिता कर भगवान अन्तर्यामी के अनुग्रह से प्रकाशित सुषुम्ना नाड़ी द्वारा निकल कर, स्थूल शरीर को त्याग कर, अर्चिरादि मार्ग में रहने वाले देवों के द्वारा सन्मानित होकर, भगवत्कृपा से आसानी से ब्रह्माण्ड मंडल को भेदन करके श्री बिरजा नदी के स्नान से सूक्ष्म वासनाओं के साथ सूक्ष्म शरीर को लीला पूर्वक परित्याग करके, अमानव भगवान का कर स्पर्श पाने के बाद नित्य

सेवा के योग्य नित्य मुक्तों के समान जो दिव्य शरीर पाता है, वही उस दिव्य धाम में जाता है और सदा के लिये संसार चक्र से मुक्त हो जाता है। वहाँ जो कोई जायगा इसी पूर्वोक्त क्रम से ही जायेगा। इस क्रम के अतिरिक्त शास्त्रों में वहाँ जाने का इतर विधान ही नहीं है। वहाँ कोई भी प्राकृत शरीर से नहीं जा सकता। शास्त्रों का यह पक्का सिद्धान्त है कि-

यद्ब्रह्मरुद्र पुरहूत मुखैर्दुरापं।
नित्यं निवृत्त निरतैः सनकादिभिर्वा।
सायुज्य मुज्वल मुशंति यहा परोक्ष्यं।
यस्मात्परं न पदमंचित मस्ति किञ्चित।।

इसका यह भाव है कि प्रकृति मण्डल के ऊपर श्री बिरजा नदी के उस पार साक्षात् परमात्मा के विराजने का जो परंधाम है वह ब्रह्म, रुद्र, इन्द्र आदि देवों को भी दुराप है याने वे लोग भी इस शरीर से वहाँ नहीं जा पाते हैं तथा सदा निवृत्ति धर्म में निरत जो सनकादि मुनि हैं वे भी इस शरीर से वहाँ नहीं जा सकते हैं। वह दिव्यधाम बिरजा नहाने के बाद ही श्रीहरि के निर्हेतुक कृपा पात्रों को प्राप्त होता है। उस धाम से बढ़कर और कोई दुःख रहित सुख का स्थान ही नहीं है। हे महात्माओं! यह सब कहने का सारांश यह भया कि सच्चे मुमुक्षु लोग नाशवन्त जो ब्रह्मांड मंडल के सुख हैं इसकी प्राप्ती के लिये कभी भी परमात्मा से प्रार्थना नहीं करते हैं। जहाँ जाकर फिर कभी नहीं आया जाता है बस वहाँ ही जाकर मैं नित्य सेवा करूँ, इसके अतिरिक्त परमात्मा से कभी ऐहिक सुख माँगते ही नहीं। बस यही सच्चे मुमुक्षुओं का परम लक्षण है। सत्संग हीन बेसमझ मनुष्यों का कहना है कि जो हमसे कुछ अन्याय हो जाता है उसमें परमात्मा ही का दोष है क्योंकि यदि वह इन्द्रिय वर्ग नहीं दिये होते तो हम अन्याय करते ही कैसे? किन्तु इस प्रकार कहने वाले बिल्कुल अज्ञानी हैं। क्योंकि परम उपकारी, परम हितैषी, गर्भ का मित्र सदा दोष रहित अपने सच्चे माता-पिता सच्चिदानन्द स्वरूप सदा निर्दोष जो प्यारे परमात्मा हैं, उनके किये हुए उपकारों को याद कर गद्गद् न होकर उल्टा उनके ऊपर दोष लगाते हैं, ऐसे लोगों की न जाने कौनसी दुर्गाति होगी। इसको श्री भगवान हीं जानें। देखिये महात्माओं! भगवान कृपा करके मनुष्य का देह दिये इस देह में सुन्दर नेत्र दिये और शास्त्रों द्वारा समझा दिये कि इन नेत्रों से वाद-विवाद तर्क-वितर्क आदि से रहित परमात्मा के प्यारे महात्माओं का दर्शन करना, भगवान के श्री अर्चा विग्रह का अति श्रद्धा पूर्वक दर्शन करना, इन नेत्रों से अपने स्वरूप को जनाने वाले ग्रन्थों का याने श्री गीता आदि का पाठ करना। इससे तुम्हारा कल्याण होगा। बाद यह भी समझा दिये कि किसी की बेटी-बहनों को बुरी भावना से नहीं देखना। जब कभी देखना तो अपनी बेटी-बहिन के समान देखना। एक अपनी स्त्री के सिवा बाकी स्त्रियों को माता के समान देखना। यदि इस उपदेश के विरुद्ध चलोगे तो इसमें तुम्हीं दोषी गिने जाओगे और उस दुर्भावना का फल तुम्हें ही भोगना पड़ेगा। लम्बी चौड़ी चित्र चित्र विचित्र परमात्मा की सृष्टि है इसमें जिन चीजों को नहीं देखने का तुम्हें बिधान बताया गया है उसको नहीं देखना चाहिये। जो चीज देखने को शास्त्रों द्वारा तुम्हें आडर दिया गया है। उसी को देखना चाहिए। ऐसा नेत्र पाकर यदि परमात्मा के दर्शन वगैरह का लाभ नहीं लेवोगे और इससे उल्टा मनमानी शास्त्र विरुद्ध विषयों को देखोगे तो अवश्य दंड भोगना पड़ेगा। पीछ पछताने से कुछ फायदा न हो सकेगा।

देखिये महात्माओं! भगवान कृपा करके मनुष्य का देह दिये इस देह में सुन्दर नेत्र दिये और शास्त्रों द्वारा समझा दिये कि इन नेत्रों से वाद-विवाद तर्क-वितर्क आदि से रहित परमात्मा के प्यारे महात्माओं का दर्शन करना, भगवान के श्री अर्चा विग्रह का अति श्रद्धा पूर्वक दर्शन करना, इन नेत्रों से अपने स्वरूप को जनाने वाले ग्रन्थों का याने श्री गीता आदि का पाठ करना। इससे तुम्हारा कल्याण होगा।

(क्रमशः)

देवहूति एवं कर्दम मुनि की कथा

तेलुगु मूल - डॉ.वैष्णवांघ्रि सेवक दास
हिन्दी अनुवाद - श्री अमोघ गौरांग दास

सृष्टि की रचना करनेवाले सभी महापुरुष प्रजापति कहलाते हैं। वे सभी ब्रह्मा जी के पुत्र हैं। पुत्रों की तरह ब्रह्मा जी को भी प्रजापति कहा जाता है। यद्यपि भगवान के आदेश का पालन करते हुए ब्रह्मा जी ने जीवों की उत्पत्ति केलिए कठोर परिश्रम किया लेकिन वह पर्याप्त न था। तब उन्होंने कड़ी तपस्या, पूजा, ध्यान एवं भक्तियोग के द्वारा महर्षियों की उत्पत्ति की। ब्रह्मा जी ने उन संत महापुरुषों की उत्पत्ति अपने शरीर के विभिन्न अंगों से की। कर्दम मुनि उनके ऐसे ही एक पुत्र थे। जीवों की रचना का महत्वपूर्ण कार्य करने के कारण कर्दम मुनि एक प्रजापति की तरह विख्यात हुए। अपने पिता से आदेश प्राप्त होने पर उनके महान कार्य को पूरा करने के लिए कर्दम मुनि ने गंभीरतापूर्वक तपस्या प्रारंभ की। अपनी दिव्य आत्मशक्ति के द्वारा उन्होंने वह तपस्या दस हजार वर्षों तक की। एक महान कार्य को पूर्ण करने के लिए भगवान की दया प्राप्त करना आवश्यक है जो केवल सच्चे समर्पण एवं तपस्या के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। सत्ययुग में लोगों की औसत

आयु एक लाख वर्ष की थी। अर्थात् कर्दम मुनि ने अपने जीवन का दस प्रतिशत समय केवल तपस्या में लगाया। कलियुग में ऐसा संभव न होने के कारण सभी वेद शास्त्रों में महामंत्र का सामूहिक कीर्तन करने की सलाह दी गई है।

कर्दम मुनि की कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर गरुड़ पर विराजमान चतुर्भुज रूप वाले परम पुरुषोत्तम भगवान श्रीहरि प्रकट हुए। वे आकाश के मध्य में अपनी दिव्य ज्योति को फैलाते हुए प्रकट हुए। भगवान के दर्शन से कर्दम मुनि परम आनंदित हो गए। भगवान की सुंदरता का रसास्वादन करते समय भगवान के यह मधुर शब्द उनके हृदय में प्रविष्ट हुए ''मुझे ज्ञात है कि इस कठोर तपस्या के पीछे तुम्हारी क्या इच्छा है। और हमने उस इच्छा को पूर्ण करने की व्यवस्था की है। संपूर्ण पृथ्वी पर राज्य करने वाले स्वयंभुव मनु की एक सुंदर पुत्री है और वे उसे विवाह में तुम्हें देने के लिए यहाँ आ रहे हैं। वंश को आगे बढ़ाने के लिए तुम्हारी एक उचित पत्नी प्राप्त करने की आकांक्षा है। राजा की यह पुत्री तुम्हारे लिए सर्वोत्तम सिद्ध होगी। उसके गर्भ से तुम्हें नौ पुत्रियाँ प्राप्त होंगी और ऋषियों के द्वारा वे सृष्टि को जीवों से भर देगी। बाद में महान तत्त्व का ज्ञान देने के लिए मैं तुम्हारी पत्नी के गर्भ से तुम्हारे प्रिय पुत्र के रूप में जन्म लूँगा। मेरे आदेश के पालन द्वारा तुम निश्चित रूप से मुझे प्राप्त करके सदा के लिए गौरवशाली बन जाओगे।''

बाद में भगवान अपने पक्षी वाले वाहन से स्वधाम चले गए। उनके वाहन गरुड़ के पंखों की फडफडाहट से सामवेद की धुन गुंजरित हो

रही थी जिसे कर्दम मुनि ने सुना। भगवान उनकी भक्ति एवं उनके समर्पण से इतने प्रसन्न हुए कि भगवान के कमल नयनों से प्रसन्नता के अश्रु गिरने से वहाँ एक सरोवर बन गया। वह बिंदुसरोवर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भगवान द्वारा की हुई भविष्यवाणी की घटनाओं को देखने के लिए कर्दम मुनि उसी स्थान पर रहने लगे। जैसा भगवान ने कहा था ठीक उसी प्रकार बाद में वहाँ राजा स्वयंभुव मनु अपनी पत्नी एवं कमल रूपी नयनों वाली पुत्री के साथ वहाँ आये।

उनकी पुत्री का नाम देवहूति था। राजा ने देवहूति की कर्दम मुनि से विवाह करने की इच्छा के बारे में बताया और कहा कि वे विवाह में अपनी पुत्री कर्दम मुनि को देने के लिए तैयार है। कर्दम मुनि राजकुमारी की इच्छा जानकर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उससे विवाह करना स्वीकार किया।

बाद में सभी वैदिक संस्कारों के अनुसार देवहूति और कर्दम मुनि का विवाह संपन्न हुआ। राजा स्वयंभुव मनु की रानी ने अपनी पुत्री को उपहार में अनेकों आभूषण एवं घर की उपयोगी वस्तुएँ दीं। राजा ने दहेज में बहुत सा धन भी दिया। एक जिम्मेदार पिता का कर्तव्य पूरा करने के पश्चात् राजा अपनी बर्हिष्मती नामक राजधानी में वापस आ गए। वराह अवतार में भगवान के प्रकट होने के समय उनके शरीर का बाल बर्हिष्मती में गिर गया था जिससे वह स्थान अत्यंत पुण्य हो गया। वह स्थान सदैव शांति एवं समृद्धि से पूर्ण तथा आपदाओं से रहित था।

यद्यपि देवहूति महलों में पली-बढ़ी थी लेकिन फिर भी उसे अपने पति की कुटिया में रहने के बारे में कोई आपत्ति नहीं थी। वह पेड़ों की छाल से बने केवल साधारण वस्त्र पहनती थी, जमीन पर सोती थी, केवल कंदमूल और फल खाती थी, और सच्चाई से अपने पति की सेवा करती थी। वह अपने स्वास्थ्य के बारे में नहीं सोचती थी जिससे वह बीमार और कमज़ोर हो गई थी। लेकिन कर्दम मुनि ने उससे बहुत प्रसन्न होकर एक वरदान माँगने के लिए कहा। देवहूति ने इच्छा प्रकट की कि उसके बच्चे हों और उनके रहने के लिए अच्छा स्थान हो। कर्दम मुनि ने तुरंत उसके लिए एक विमान महल बनाया जो इच्छा अनुसार उड़कर कहीं भी जा सकता था। वह स्वर्ग की तरह चमक रहा था। कर्दम मुनि ने अपनी पत्नी से बिंदुसरोवर में स्नान करने के लिए कहा। देवहूति ने अपने गंदे वस्त्रों, उलझे बालों एवं कमजोर शरीर के साथ उस सरोवर में प्रवेश किया। लेकिन वह उस सरोवर से बाहर एक देवकन्या के रूप में निकलीं। वे अकेली नहीं अपितु अनेक दासियों के साथ बाहर निकलीं। कर्दम मुनि उसकी उत्कृष्ट सुंदरता से आकर्षित हुए और विवाह के बाद के दांपत्य उत्सव के लिए उसे विमान महल में संपूर्ण सृष्टि का भ्रमण कराया। वे स्वर्ग में नंदनवन के जंगलों समेत सृष्टि के सभी सुंदर स्थानों पर गये। बाद में जब वे अपनी कुटिया पर लौटे तो कर्दम मुनि ने अपनी योग शक्ति से नौ विभिन्न रूपों को प्राप्त करके देवहूति के साथ संगम किया। उन्होंने १०० वर्षों तक विवाहित जीवन का आनंद लिया और उन्हें नौ सुंदर कन्याएँ प्राप्त हुईं। शीघ्र

उसके बाद कर्दम मुनि ने सन्यास लेना चाहा तब देवहूति ने आपत्ति प्रकट करते हुए प्रार्थना की और कहा ''हे पतिदेव! आपने अपना वचन पूरा किया है, लेकिन एक बार यह पुत्रियाँ अपने पतिओं के साथ चली जाएगीं तब मेरी देख-रेख कौन करेगा? यद्यपि आपने हमें वरदान दिया लेकिन उस समय हमने आपसे मोक्ष मांगने के बारे में नहीं सोचा।''

कर्दम मुनि देवहूति के विनम्र स्वभाव से प्रसन्न हुए और उसे भविष्य के बारे में बताकर सांत्वना प्रदान की। भगवान स्वयं उसके गर्भ से जन्म लेकर उसे सांख्य दर्शन का उपदेश देने वाले थे। बाद में भगवान देवहूति के गर्भ में प्रविष्ट हुए। सूचना मिलने पर सभी ऋषियों के साथ ब्रह्मा जी कर्दम मुनि की कुटिया पर पहुँचे। ब्रह्मा जी के आदेश से कर्दम मुनि ने सभी पुत्रियों का विवाह ऋषियों के साथ संपन्न किया। कला का विवाह मरीचि से, अनुसूया का अत्रि से, श्रद्धा का अंगिरा से, हविर्भू का पुलस्त्य से, गति का पुलह से, क्रिया का क्रतु से, ख्याति का भृगु से, अरुंधती का वसिष्ठ से एवं शांति का अथर्वा से एक अद्भुत विवाह समारोह में संपन्न हुआ। कर्दम मुनि की अद्भुत कन्याओं से विवाह करके सभी ऋषि अपनी कुटिया में चले गए।

बाद में कर्दम मुनि की कुटिया में कपिल भगवान प्रकट हुए। जब कर्दम मुनि समझ गए कि भगवान उनके घर प्रकट हुए हैं तो वे अत्यंत प्रसन्न हुए और एकांत में भगवान के पास पहुँचे। उन्होंने भगवान को अपने हृदय में रखकर सन्यास लेने एवं संपूर्ण पृथ्वी पर भ्रमण करने की अपनी इच्छा व्यक्त की। कपिल भगवान उनके इन शब्दों को सुनकर बहुत प्रसन्न हुए और कहा ''अपने वचन को पूरा करने के लिए मैं तुम्हारे घर में प्रकट हुआ हूँ। अपने सभी कार्यों को मुझे समर्पित करके अपनी इच्छा के अनुसार आगे बढ़ो। मृत्यु पर विजय प्राप्त करके अमर हो जाओ। तुम हमें परमात्मा के रूप में निरंतर अपने हृदय में देखोगे। मैं अपनी माँ को नित्य ज्ञान का उपदेश दूँगा जिससे उनका भय समाप्त हो जाएगा और उन्हें निश्चित रूप से मोक्ष की प्राप्ति होगी।'' तब कर्दम मुनि तीन बार भगवान की परिक्रमा करके शांतिपूर्वक वन की ओर चल पड़े। वन में वह एक समदर्शी व्यक्ति की तरह रहते थे और सदैव अपने हृदय में भगवान के दर्शन प्राप्त करते थे। उनका मन बिना तरंगों वाले समुद्र की भाँति शांत हो गया। वह उसी शांत अवस्था में रहे और अंत में उन्होंने परम धाम की प्राप्ति की।

पति के जाने के पश्चात् देवहूति अपने पुत्र के साथ बिंदुसरोवर के तट पर ही रहती थीं। उन्होंने पूर्ण संतुष्टि पाने के लिए अपने पुत्र से अविनाशी ज्ञान का उपदेश देने की प्रार्थना की। उन्होंने स्वयं को अज्ञानता एवं भ्रम के सागर से बचाने की प्रार्थना की। तब कपिल भगवान ने उन्हें प्रेमपूर्वक सांख्य दर्शन का उपदेश देकर उनका उद्धार किया। कपिल भगवान ने उन्हें पूर्ण मुक्ति प्राप्त होने का आश्वासन दिया। उस उपदेश का ज्ञान देने के पश्चात् भगवान घर से उत्तर-पश्चिम की दिशा में चले गए। भगवान द्वारा स्वेच्छा पूर्वक यात्रा करते समय देवताओं एवं अप्सराओं जैसे महान जीवों ने अपनी प्रार्थनायें भेंट कीं। समुद्र देव ने उन्हें सम्मानपूर्वक जल अर्पित किया। पहले भगवान हिमालय पर्वत पर गए फिर वह गंगा नदी के डेल्टा क्षेत्र में पहुँचे। संगम के उस स्थल पर समुद्रदेव ने भगवान को एक सुंदर स्थान भेंट किया। कपिल भगवान वहाँ आज भी बद्ध आत्माओं के उद्धार के लिए रहते हैं। कपिल भगवान कपिल भगवान की कथा एवं उनके उपदेशों का श्रवण करता है तथा उनके सांख्य दर्शन का अध्ययन करता है वह निश्चित रूप से भगवान कृष्ण का भक्त बन जाता है। कपिल भगवान की कथा श्रीमद्भागवतम् के तीसरे स्कन्ध में आती है। वे भगवान का पाँचवाँ अवतार हैं।

सूचना

मुफ्त चिकित्सा सेवाएँः अलिपिरि से तिरुमल को जानेवाले पैदल रास्ते में स्थित तीसरे गालिगोपुरम् के पास निःशुल्क अस्पताल में और सातवें मील के पास स्थित प्रथमचिकित्सा केन्द्र में चिकित्सा सेवाएँ उपलब्ध हैं। तिरुमल के अश्विनी अस्पताल में भी हृदय संबंधित आकस्मिक रोगों की चिकित्सा की सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

(गतांक से)

श्री रामानुज नूट्रन्दादि

मूल - श्रीरंगामृत कवि विरचित

प्रेषक - श्री श्रीराम मालपाणी

निलत्तै च्चेरुत्तुण्णुम् नीचक्कलियै, निनैप्परिय
पलत्तै च्चेरुत्तुम् पिरङ्गियदिल्लै, एन् पेय्विनै तेन्
पुलत्तिलू पोरित्तवप्पुत्तकच्चुम्मै पोरुक्कियपिन्
नलत्तै प्पोरुत्तदु, इरामानुजन्तन् नयप्पुहळे॥३४॥

भगवतो रामानुजस्य कल्याणगुणा अतिनृशंसकलिपुरुष विक्रमविध्वंसनतो न प्रचकाशिरे; अपितु मदीयपापग्रन्थिलेखभरितचित्रगुप्त पुस्तकबृन्ददहनत एवातिमात्रं प्रकाशमगु:। (कलिपुरुषविक्रमादपि स्वपापविक्रमो भूयिष्ठ आसीदिति नैच्यानुसन्धानसीमा फलिता।)

श्रीरामानुजस्वामीजी के कल्याणगुण, इस भूतल की पीडा करनेवाले नीच कलिपुरुष के कल्पनातीत बल का ध्वंस करने से प्रकाशमान नहीं हुए; किंतु मेरे अनुष्ठित प्रबल पापों का लेख, यमलोक गत (चित्रगुप्त के पास रहने वाली) पुस्तकों की गठरी जला देने के बाद ही वे बहुत प्रकाशमान होने लगे। (विवरण- श्रीरामानुजस्वामीजी का कलिपुरुष पर विजय पाना कोई बडी बात नहीं है; और इससे आपको कोई विशेष ख्याति भी नहीं मिलेगी। परंतु मेरे अनुष्ठित उस कलि से भी प्रबल पापों का विनाश करना उससे कई गुना अधिक कठिन काम है; जिसके पूरा होने से आपका यश विशेषत: उज्ज्वल बना। समझना चाहिए कि नैच्यानुसंधान का यह भी एक विलक्षण प्रकार है।

(क्रमश:)

भगवद्गीता और नौजवान

लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग की छह कठिनाइयाँ

तेलुगु मूल - डॉ.वैष्णवांघ्रि सेवक दास
हिन्दी अनुवाद - श्री अमोघ गौरांग दास

जीवन लक्ष्य सभी व्यक्तियों, विशेषकर युवाओं के लिए जीवन रेखा के तुल्य है। व्यवस्थित जीवन रेखा के अनुसार जीवन व्यतीत होने पर लक्ष्यों की प्राप्ति के साथ-साथ आनंद पूर्वक जीवन का चलना जारी रहता है। लक्ष्यों के बिना निरुद्देश्य जीवन दिशा सूचक यंत्र रहित जहाज की भाँति है। ऐसी अवस्था में जहाज का तट पर पहुँचना पक्का नहीं है। लक्ष्य का संबंध बुद्धि से होता है जबकि इच्छा का संबंध मन से होता है। इच्छाएँ अनेक व्यक्तियों की होती हैं लेकिन कुछ व्यक्ति ही उन इच्छाओं को लक्ष्यों में परिवर्तित कर पाते हैं। समय और दिन स्वतः बीत जाने पर अंत में लोग अरुचिपूर्ण जीवन को स्वीकार कर लेते हैं। ऐसा जीवन किसी को पसंद न होने पर भी बहुत कम ही लोग जीवन में लक्ष्यों को निर्धारित करने का प्रयत्न करते हैं। किसी प्रकार लक्ष्यों को निर्धारित करने के पश्चात् भी उन्हें प्राप्त करने में छः प्रकार की कठिनाइयाँ आती हैं। यह कठिनाइयाँ निम्न प्रकार हैं १. अत्याहार २. अत्यधिक प्रयास करना ३. व्यर्थ की बाते करना ४. विधि विधानों का केवल नाम के लिए अभ्यास करना ५. बुरे व्यक्तियों का संग करना तथा ६. लालच करना। यह छह कठिनाइयाँ निश्चित रूप से लक्ष्य की प्राप्ति में रुकावट डालती हैं। शास्त्रों के अनुसार यह हमारे जीवन की उन्नति को रोक देती हैं।

इन छह कठिनाइयों में से पहली जिह्वा एवं पेट से संबंधित है। जिह्वा एक ज्ञानेन्द्रिय है, जबकि उदर अर्थात् पेट एक कर्मेन्द्रिय है। अत्यधिक प्रयास करने से उत्पन्न दूसरी कठिनाई का संबंध मन एवं शरीर दोनों से होता है। इसका उद्देश्य मात्र क्षणिक ख्याति की प्राप्ति होता है। व्यर्थ बातों से उत्पन्न तीसरी कठिनाई का संबंध कानों से होता है। पास आने पर दो व्यक्ति एक मिनट के लिए भी चुप नहीं रह पाते हैं। लोग अस्पतालों, मंदिरों एवं अन्य सुव्यवस्थित स्थानों पर भी शांति स्थापित करने में असमर्थ होते हैं। वह थोड़ा भी नहीं सोचते हैं कि उनकी बातें आवश्यक हैं या नहीं। भगवान ने मनुष्यों को बातें करने की योग्यता का अतुलनीय उपहार दिया है। एक समझदार व्यक्ति इस अमूल्य उपहार का उपयोग उत्तम प्रश्नों के उत्तम उत्तर देने के लिए करता है। विद्यार्थियों को उत्तम प्रश्न के उत्तम उत्तर देने की इस विधि से कम से कम पाँच नई बातों को सीखने का निश्चय करना चाहिए। चौथी कठिनाई नियमों का पालन केवल नाम मात्र के लिए करने से उत्पन्न होती है। इससे नियमों के पालन का आभास होता है लेकिन कार्यों को गंभीरतापूर्वक न किए जाने के कारण उचित परिणाम की प्राप्ति नहीं होती है। युवा सामान्यतः

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा ''परं दृष्ट्वा निवर्तते।'' इसका वर्णन भगद्गीता में दूसरे अध्याय के उनसठवें श्लोक में किया गया है। इसका अर्थ है कि उच्च स्तर के आनंद का अनुभव होने पर हम निम्न स्तर की भोग इच्छाओं से बाहर निकल सकते हैं। अतः विद्यार्थी अपने उच्च लक्ष्य की ओर बढ़ते कदमों की सफलता का अनुभव होने पर आसानी से इन छह कठिनाइयों से बाहर निकल सकते हैं।

अपने अग्रजों के अनुभवों एवं उनकी सलाह का प्रयोग न करने के कारण अधिक लाभ प्राप्त करने में असमर्थ होते हैं। कुसँगति की पाँचवी कठिनाई के कारण विशेषतः युवाओं का ऐसा पतन होता है कि प्रायः उन्हें उस अवस्था से बाहर निकालना असंभव हो जाता है। पहली चार कठिनाइयों में केवल कुछ इंद्रियाँ ही क्रियाशील होती हैं जबकि पाँचवी कठिनाई में बिना किसी भेद के सभी इंद्रियाँ क्रियाशील होती हैं। जिस प्रकार आग के पास आने पर ही गरमी का एहसास होता है उसी प्रकार बुरे व्यक्तियों के पास जाने से उनकी कुसंगति के दुष्प्रभावों का अनुभव होता है। लक्ष्य की प्राप्ति में छठी एवं अंतिम कठिनाई लालच की है। यह पूरी तरह मन से संबंधित है। विद्यार्थियों एवं युवाओं को वह स्वीकार करना चाहिए जो उनके लक्ष्य के अनुकूल हो तथा लक्ष्य से प्रतिकूल चीजों से दूर रहना चाहिए।

इन छह कठिनाइयों को पार करने के लिए भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण द्वारा बताए हुए संदेश को सदैव याद रखना चाहिए। भगवान श्रीकृष्ण ने कहा "परं दृष्ट्वा निवर्तते।" इसका वर्णन भगद्गीता में दूसरे अध्याय के उनसठवें श्लोक में किया गया है। इसका अर्थ है कि उच्च स्तर के आनंद का अनुभव होने पर हम निम्न स्तर की भोग इच्छाओं से बाहर निकल सकते हैं। अतः विद्यार्थी अपने उच्च लक्ष्य की ओर बढ़ते कदमों की सफलता का अनुभव होने पर आसानी से इन छह कठिनाइयों से बाहर निकल सकते हैं। जैसे एक बच्चे के हाँथ से चाकू लेने के लिए उसे कोई अन्य वस्तु देना आवश्यक है उसी प्रकार सूखी रोटी खाने वाला व्यक्ति एक कटोरी गुलाबजामुन मिलने पर रोटी को छोड़ देगा। वास्तव में इस प्रभाव को ही "परं दृष्ट्वा निवर्तते" कहते हैं। अतः सभी विद्यार्थियों को भगवद्गीता का यह कथन एक कागज पर लिख कर अपनी अध्ययन वाली मेज के सामने की दीवार पर लगाने की विशेष सलाह दी जाती है। माउंट एवरेस्ट पर चढ़ने में सफल हुए प्रथम व्यक्ति एडमंड हिलेरी अपने घर के कमरों की दीवारों पर एवरेस्ट की तस्वीरों को सदैव देखते थे। वे अपने ध्यान केवल उसी पर केंद्रित रखते थे। इसी प्रकार यदि कोई कलेक्टर, वैज्ञानिक, नोबेल पुरस्कार विजेता या ओलंपिक्स में स्वर्ण पदक विजेता बनना चाहता है तो उसे अपने सपनों को दीवारों पर अंकित करके अपना संपूर्ण ध्यान उन पर ही केंद्रित करना चाहिए। तब वह निसंदेह अपने लक्ष्य को प्राप्त करेगा। भगवद्गीता के संदेश "परं दृष्ट्वा निवर्तते" का पालन करने वाला अपने निर्धारित लक्ष्यों को निश्चित रूप से प्राप्त करेगा।

यात्रियों को सूचना

१. मुफ्त में सामान परिवहन केन्द्रः तिरुपति के अलिपिरि से और श्रीवारि मेट्टु से पैदल रास्ते में जानेवाले भक्तों को अपने सामान को अलिपिरि और श्रीवारि मेट्टु के पास स्थित मुफ्त सामान परिवहन केन्द्र में देना चाहिए। फिर इस सामान को तिरुमल स्थित सामान परिवहन केन्द्र में वापस लेना होगा।

२. पीने का पानी और सुरक्षाः अलिपिरि से पैदल रास्ते में जानेवाले भक्तों को रास्ते भर पीने के पानी को प्रबंध किया गया है और यात्रियों की सुरक्षा के लिए देवस्थान ने सुरक्षाकर्मियों की नियुक्ति की।

३. तिरुमल में ठहरने के लिए आवास समुदायः भक्तों ने ठहरने के लिए तिरुमल में निःशुल्क आवास समुदाय की व्यवस्था की गयी है। इस में मुफ्त लॉकर, मुफ्त भोजन और शौचालय की सुविधाएँ उपलब्ध हैं।

४. बस की सुविधाः तिरुमल में एक प्रांत से दूसरे प्रांत तक जाने के लिए मुफ्त में बस की व्यवस्था की गयी है। लगभग १२ बसें इस कार्य में संलग्न हैं। ति.ति.देवस्थान के आध्वर्य में हर ४ मिनिट को एक बस २४ घंटे लगते हैं।

वैरमुडि ब्रह्मोत्सव

- श्री राजेन्द्र नटवरलाल लड्ढा

कर्नाटक के मांड्या जिले में मेल्कोटे नामक एक दिव्य क्षेत्र मैसूर के उत्तर में है। इसे यादवाद्री, नारायणाद्री, वेदाद्री, यदुशैल तथा तिरुनारायणपुरम भी कहते हैं। यह श्रीवैष्णवों का अभिमान स्थल कहा जाता है। यहाँ श्रीरामानुजस्वामीजी ने १४ वर्ष तक निवास किया और श्रीवैष्णव संप्रदाय का प्रचार-प्रसार किया। यहाँ मूल विग्रह श्री तिरुनारायण भगवान हैं जो श्रीरामानुजस्वामीजी को जमीन से प्राप्त हुये थे। यहाँ के उत्सव विग्रह श्री संपत्कुमार - श्री चेल्वनारायण - श्री रामप्रिय - श्री चेल्वपिळ्ळई - श्री चेल्वराया नाम से जाने जाते हैं। उत्सव विग्रह श्री संपत्कुमार भगवान की भगवान श्रीराम ने और तत्पश्चात् भगवान श्रीकृष्ण ने भी सेवा की है यह मान्यता है। श्रीरामानुजस्वामीजी ने श्री संपत्कुमार भगवान को अपना पुत्र मानकर सेवा की।

वैरमुडि ब्रह्मोत्सव (वैरमुडि उत्सव) सम्पूर्ण दक्षिण भारत में तथा श्रीवैष्णवों के लिए जाना-माना और महत्त्वपूर्ण उत्सव है। यह ब्रह्मोत्सव मीन मास हस्ता नक्षत्र में संपन्न होता है जो प्रतिवर्ष मार्च-अप्रैल में आता है। इस उत्सव की मुख्य विशेषता है कि यहाँ प्रतिष्ठित तिरुनारायण भगवान के उत्सव विग्रह श्री सम्पतकुमार भगवान की भव्य दिव्य सवारी मेल्कोटे के अलंकृत वीथियों में से निकलती है। इस महोत्सव में ४,००,००० तक भक्तगण पधारते हैं। श्री संपत्कुमार भगवान श्रीदेवी-भूदेवी सहित गरुडवाहन पर विराजमान होकर सवारी में दर्शन देते हैं। उत्सव के चतुर्थ दिन यह सवारी रात में निकलकर प्रातः तक चलती है। उस दिन भगवान दिव्य हीरों से जड़ित वैरमुडि मुकुट धारण करते हैं इसलिए यह वैरमुडि उत्सव कहलाता है।

प्रह्लादजी के पुत्र विरोचन राक्षस ने भगवान अनिरुद्ध का वैरमुडि मुकुट चुराकर पाताल लोक में छिपालिया था। गरुडजी ने विरोचन राक्षस का पीछा किया, उसको युद्ध में हराकर वह मुकुट वापिस ले आए। लौटते समय मुकुट का नीलमणि तंजावूर में अम्माजी के मंदिर के पास गिर गया और उसका रूपांतर एक जलप्रवाह में हुआ, जिसे मणिमुत्तरु कहते हैं। गरुडजी को मार्ग में जाते हुये भगवान श्रीकृष्ण वृन्दावन में कड़ी धूप में खेलते हुये दर्शन दिये। गरुडजी ने वह मुकुट भगवान के मस्तक पर धारण कराया और स्वयं अपने पंख फैलाकर भगवान के लिए शीतल छाया का प्रबंध किया। उस समय भगवान श्रीकृष्ण संपत्कुमार भगवान की सेवा करते थे। भगवान श्रीकृष्ण ने यह मुकुट श्री संपत्कुमार भगवान को धारण करवाया।

इसी परंपरा से यह दिव्य मुकुट प्रतिवर्ष एक दिन श्री संपत्कुमार भगवान को धारण कराया जाता है, जो विशेष रूप से दर्शनीय है। वैकुंठ से आया हुआ यह दिव्य मुकुट प्रतिवर्ष वैरमुडि ब्रह्मोत्सव में मैसूर के राजकोष से सुरक्षितरूप से लाया जाता था। अब यह मुकुट मांड्या जिले के सरकारी कोष में सुरक्षित रखा जाता है और वहाँ से लाया जाता है। यह दिव्य वैरमुडि मुकुट विशेष सम्मान सहित लाया जाता है। यह वैरमुडि मुकुट सूरज के प्रकाश में कभी नहीं निकाला जाता है। रात्री में भगवान धारण करते हैं और दिन में यह विशेष पेटिका में सुरक्षित रखा जाता है।

ब्रह्मोत्सव के चतुर्थ दिन पर यह दिव्य वैरमुडि मुकुट धारण करके भगवान सवारी में दर्शन देते हैं। सवारी के सायंकाल में यह दिव्य वैरमुडि मुकुट श्री संपत्कुमार भगवान को श्रीरामानुजस्वामीजी के समक्ष मुख्य अर्चक द्वारा धारण कराया जाता है। परंपरा अनुसार भगवान के मस्तक पर धारण कराने से पूर्व इस मुकुट का दर्शन नहीं करना चाहिए। इसलिए धारण करानेवाले मुख्य अर्चक भी अपने नेत्रों पर रेशम की पट्टी बांधते हैं।

श्री वैरमुडि उत्सव की और एक विशेषता है। श्रीरामचन्द्र प्रभु का राज्याभिषेक मीन मास पुष्य नक्षत्र में होना निश्चित हुआ था। परंतु कैकेयी के कारण उस दिन राज्याभिषेक नहीं हो सका। श्री लक्ष्मण जी के अवतार श्रीरामानुजस्वामीजी ने ठीक इसी दिन श्री संपत्कुमार भगवान को वैरमुडि मुकुट धारण कराया है। लाखों भक्तों की उपस्थिती में यह उत्सव प्रतिवर्ष संपन्न होता है और भगवान विशेष दर्शन देकर अपने भक्तों पर कृपा करते हैं।

समुद्र-मंथन

- प्रो. योगेश चन्द्र शर्मा

समुद्र-मंथन की चर्चा अनेक पुराणों में की गयी है। मूल रूप में समान होते हुए भी इस घटना के विवरण में यत्र-तत्र कुछ अन्तर भी हैं। श्रीमद्भावगत पुराण में समुद्र-मंथन की घटना का विवरण इस प्रकार दिया हुआ है।

दैत्यों से बार-बार पराजित होने और उनकी प्रबल शक्ति से आतंकित होने के कारण सभी देवता मार्गदर्शन के लिए ब्रह्मा जी के पास पहुँचे। ब्रह्मा जी ने उन्हें भगवान नारायण की शरण जाने के लिए कहा। जब देवगण भगवान नारायण की शरण पहुँचे और अपनी व्यथा-कथा सुनायी, तो उन्होंने परामर्श दिया कि वे दैत्यों से मित्रता स्थापित करके उनके सहयोग से समुद्र का मंथन करें, जिससे उन्हें अमृत की प्राप्ति होगी। इस अमृत से वे शक्तिशाली और अमर हो जाएँगे। क्षीरसागर में किये जाने वाले इस समुद्र-मंथन के लिए भगवान नारायण ने मन्दरांचल पर्वत को मथानी और नागराज वासुकि को रस्सी बनाने की सलाह दी। आवश्यकतानुसार उन्होंने स्वयं अपने सहयोग का भी आश्वासन दिया।

भगवान नारायण के परामर्श के अनुसार देवगण दैत्यराज बलि के पास पहुँचे और समुद्र-मंथन के लिए उनके सामने मित्रता का प्रस्ताव रखा। दैत्यों को समुद्र-मंथन की योजना और मित्रता का प्रस्ताव रुचिकर लगा। वे सहयोग के लिए तैयार होगए। तब सर्वप्रथम देवता और दैत्यों ने मिलकर मन्दराचल पर्वत को समुद्र तक खींच लाने का प्रयत्न किया, मगर वे असफल रहे। इस पर भगवान नारायण ने ही मन्दराचल पर्वत को उठाकर समुद्र के बीच में डाल दिया। तदुपरान्त नागराज वासुकि को रस्सी बनाकर समुद्र-मंथन प्रारम्भ किया गया। वासुकि के मुख की ओर दैत्य थे और पूँछ की ओर देवता। यह व्यवस्था सावधानीपूर्वक सोच-समझकर देवताओं ने ही की थी। इस व्यवस्था से दैत्यों को बड़ी क्षति हुई। वासुकि के नेत्र, मुख और श्वासों से निकली विषाग्नि ने अनेक दैत्यों को घायल और कान्तिविहीन कर दिया।

लंबे समय तक समुद्र-मंथन का कार्य चलता रहा। इस सामूहिक प्रयत्न से, समुद्र-मंथन से जो सर्वप्रथम वस्तु निकली, वह भयानक विष था, जिसे देखकर देवता और दैत्य दोनों में ही त्राहि-त्राहि मच गयी। तब दोनों ने मिलकर शिव की आराधना की और शिव ने लोक कल्याणार्थ उस विष को अपने गले में धारण कर लिया। इसी से वे 'नीलकंठ' कहलाए।

समुद्र-मंथन का कार्य फिर चलने लगा। निराधार होने के कारण जब मंदराचल पर्वत समुद्र में डूबने लगा, तो स्वयं भगवान नारायण ने कच्छप रूप धारण करके उस पर्वत को अपनी पीठ पर रख लिया। इससे समुद्र-मंथन के कार्य ने और अधिक गति पकड़ ली। तब अनेक वस्तुएँ समुद्र से निकलने लगी, जो क्रमशः इस प्रकार थीं - कामधेनु गाय, उच्चैःश्रवा अश्व, ऐरावत हाथी, कौस्तुभ पद्मरागमणि, पारिजात पुष्प, अप्सराएँ तथा 'श्री लक्ष्मी'। 'श्री लक्ष्मी' के अतिरिक्त

अन्य सभी वस्तुओं पर देवताओं ने आसानी से अधिकार कर लिया। दैत्यों ने उनका विरोध नहीं किया। कारण दो थे, प्रथम तो उन वस्तुओं का महत्व उन्हें समझ में नहीं आया और दूसरे उनकी दृष्टि केवल अमृत पर था। अन्य वस्तुएँ उनके लिए गौण थीं। फिर भी जब 'श्री लक्ष्मी' समुद्र से निकलीं, तो देवताओं के साथ ही दैत्य भी उन्हें प्राप्त करने के लिए लालायित हो उठे। कारण था, उनका अद्वितीय सौन्दर्य। सभी देवता और दैत्य उन्हें प्राप्त करने के लिए होड़ करने लगे। तत्कालीन परम्परा के अनुसार अब निर्णय स्वयं 'श्री लक्ष्मी' को करना था। उन्होंने सभी देवताओं और दैत्यों को अस्वीकार कर दिया। लक्ष्मी को दुर्वासा मुनि में क्रोध, बृहस्पति और शुक्र में वैराग्य का अभाव, ब्रह्म और चन्द्रमा में कामातुरता, परशुराम में दयाहीनता, मार्कण्डेय में स्त्री रंजक स्वभाव का अभाव, हिरण्यकशिपु में आयु की अनिश्चितता और शिव में सर्प की भयानकता नजर आयी और इसलिए उन्होंने उनमें से किसी को भी पसंद नहीं किया। अंत में विष्णु ही उन्हें सर्वगुण सम्पन्न नजर आए और उन्होंने उनके गले में वरमाला डाल दी। विष्णु ने भी अद्वितीय सुन्दरी और गुणवती 'श्री लक्ष्मी' को स्वीकार कर लिया।

'श्री लक्ष्मी' संबंधी विवाद निकल जाने पर समुद्र-मंथन का कार्य पुनः आगे बढ़ा। इस बार सुरा नाम की एक रूपवती कन्या उसमें से बाहर निकली, जिसे दैत्यों ने स्वीकार कर लिया। देवताओं ने इस पर कोई विरोध नहीं किया।

समुद्र-मंथन की अंतिम उपलब्धि के रूप में धन्वन्तरि नामक एक महापुरुष समुद्र में से निकले, जिनके हाथ में अमृत-कुम्भ (अमृत का घड़ा) था। दैत्यों ने धन्वन्तरि के हाथों से अमृत का वह कलश छीन लिया और तब उनमें आपस में ही इस बात पर विवाद उत्पन्न हो गया कि अमृत का पान कौन-कौन करे। अमृत-कुम्भ के दैत्यों के हाथों में चले जाने से देवता क्षुब्ध होगए। उन्हें अपना संपूर्ण प्रयत्न असफल होता-सा लगा। अमृत के लिए उन्होंने भी दैत्यों के सामने अपना अपना दावा प्रस्तुत किया। लेकिन दैत्यों के आपसी विवाद के शोरगुल में उनकी आवाज दबकर रह गयी। लड़ाई-झगड़ा करने से यह आशंका थी कि कहीं कलश टूटकर अमृत बिखर न जाए। ऐसी स्थिति में भगवान विष्णु ने ही फिर मदद की। वे अत्यन्त आकर्षक मोहिनी रूप धारण करके दैत्यों के बीच चले गए। उन्हें देखकर दैत्य अपने विवाद को भूलकर उन्हीं के इर्द-गिर्द इकट्ठे हो गए। अमृत का आकर्षण भी कुछ समय के लिए कम हो गया। इसलिए जब मोहिनी रूपधारी विष्णु ने उनसे अमृत-कलश माँगा, तो उन्होंने उसे न केवल सहज रूप में दे दिया, अपितु उन्होंने उसे देवता और दैत्यों में बाँटने का आग्रह भी किया। देवता और दैत्य दोनों ही अलग-अलग पंक्ति बद्ध होकर बैठ गए। मोहिनी रूपधारी विष्णु ने दैत्यों को अपने आकर्षण में उलझाकर संपूर्ण अमृत देवताओं में ही बाँट दिया। राहु नामक एक दैत्य इस रहस्य को समझ गया। इसलिए वह देवताओं की पंक्ति में जाकर बैठ गया और इस प्रकार उसने भी अमृत का पान कर लिया। इसी बीच सूर्य और चन्द्रमा ने राहु को पहचान कर भगवान विष्णु को बता दिया। तब राहु का मस्तक काट दिया गया, किन्तु अमृत के प्रभाव से वह मरा नहीं। उसके दो हिस्से हो गये - राहु और केतु। ये दोनों ही हिस्से सूर्य और चन्द्रमा के हमेशा-हमेशा के लिए शत्रु होगए।

अमृत वितरण के उपरान्त विष्णु अपने मूल रूप में आए। तब दैत्यों को अपनी भूल का पता चला। वे अत्यंत क्रोधित हुए और उन्होंने तत्काल देवताओं पर आक्रमण कर दिया। अमृतपान के कारण देवता इस समय अत्यन्त शक्तिशाली और अमर हो चुके थे। इसलिए विजयश्री भी उन्हीं के हाथ लगी।

मत्स्य पुराण में समुद्र-मंथन की इस घटना का उल्लेख कुछ निम्न प्रकार से हुआ है। मत्स्य पुराण के अनुसार दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य के पास संजीविनी विद्या थी। देवताओं और दैत्यों के बीच प्रायः होने वाले युद्धों में जो भी दैत्य मारे

कालकूट विष से मुक्ति प्राप्त कर लेने के बाद देवता और दैत्यों ने पुनः समुद्र-मंथन प्रारंभ कर दिया। इस बार उसमें से मदिरा प्रकट हुई और तदुपरान्त कामधेनु गाय प्रकट हुई। इस समय तक प्राप्त प्रमुख वस्तुओं को वितरण इस प्रकार हुआ। भगवान विष्णु ने लक्ष्मी और महामणि कौस्तुभ को, इन्द्र ने ऐरावत हाथी को और सूर्य ने उच्चैःश्रवा अश्व को प्राप्त किया।

जाते, उन्हें वे अपनी इस विद्या के द्वारा पुनर्जीवित कर देते थे। देवताओं के पास इस प्रकार की विद्या का ज्ञाता कोई भी व्यक्ति नहीं था। इससे वे बहुत दुःखी थे। उनके दुःख को देखकर ब्रह्मा जी ने उन्हें परामर्श दिया कि वे कुछ समय के लिए दैत्यों से मित्रता स्थापित कर लें और उनके सहयोग से समुद्र-मंथन करके अमृत प्राप्त कर लें। मन्दराचल पर्वत को मथानी और शेषनाग को रस्सी के रूप में लेने की सलाह भी उन्होंने दी।

समुद्र-मंथन का कार्य जब प्रारम्भ हुआ, तो ऊपर से मंदराचल को रोकने का कोई आधार न होने से मंथन में कठिनाई आयी। तब सभी देवता और दैत्य भगवान विष्णु के पास पहुँचे और उन्हें मंदराचल पर्वत को अपने हाथों में थामने के लिए निवेदन किया। भगवान विष्णु ने इस निवेदन को स्वीकार करके मन्दराचल पर्वत के ऊपरी भाग को अपने हाथों में थाम लिया। इसके बाद मंथन कार्य सुचारु ढंग से आगे बढ़ा।

देवता और दैत्य मिलकर सौ वर्षों तक समुद्र-मंथन करते रहे। इस पर भी जब समुद्र में से कुछ भी नहीं निकला, तो देवताओं में थकान और निराशा के भाव उत्पन्न हुए। इस पर इन्द्र ने शीतल पवन चलाकर और मधुर कणों की वृष्टि करके उनकी थकान हर ली और ब्रह्म ने उन्हें इन शब्दों के साथ प्रोत्साहित किया - 'उद्योगी पुरुषों को अपार लक्ष्मी अवश्य प्राप्त होती है। इसलिए तुम लोग समुद्रा का मंथन करते चलो।' इन शब्दों से उत्साहित होकर देवता और दैत्य अपनी पूर्ण शक्ति के साथ समुद्र-मंथन करने लगे।

धीरी-धीरे समुद्र-मंथन के परिणाम सामने आने लगे। मंदराचल पर्वत पर रहने वाले हिंसक तथा अन्य पशु समुद्र में गिरकर चूर चूर हो गये थे। उनकी मज्ञा तथा समुद्र के जल और जलचर से मिलकर अब वारुणी उत्पन्न हुई, जिसे पीकर देवता और दैत्यों ने अपने अंदर अत्यधिक शक्ति अनुभव की। इसके बाद समुद्र-मंथन का कार्य आगे बढ़ा, तो मन्दराचल पर्वत से अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियाँ टूट-टूटकर समुद्र में गिरने लगी और मंथन से उनका रस तैयार होने लगा। इस रस ने समुद्र के पानी को पहले दूध के समान और फिर घृत के समान शक्तिशाली बना दिया, जिसे पीकर देवता और दैत्यों ने अपने अन्दर नयी स्फूर्ति महसूस की। तदुपरान्त समुद्र से चन्द्रमा निकला और उसके बाद लक्ष्मी उत्पन्न हुई। लक्ष्मी के बाद क्रमशः सुरा देवी, कौस्तुभ मणि और पारिजात उत्पन्न हुए। इसके बाद समुद्र से नीले रंग का विषैला धुंआ निकला, जिसने अनेक देवता और दैत्यों को बेहोश कर दिया। यह धुंआ धीरे-धीरे अग्नि में परिवर्तित हो गया और बाद में इससे तरह-तरह के विषैले सर्प तथा गिरगिट आदि जीव बन गए। बाद में समुद्र से भयानक विषधारी कालकूट उत्पन्न हुआ, जो मेघ की तरह अत्यन्त भयंकर रूप से गर्जना कर रहा था। कालकूट की भीषण गर्मी से सब लोग तपने लगे। तब उससे मुक्ति प्राप्त करने के लिये देवता और दैत्यों ने शंकर की आराधना की और शंकर ने उस सब के कल्याण के लिए उस भयानक विष को अपने कंठ में धारण कर लिया।

कालकूट विष से मुक्ति प्राप्त कर लेने के बाद देवता और दैत्यों ने पुनः समुद्र-मंथन प्रारंभ कर दिया। इस बार उसमें से मदिरा प्रकट हुई और तदुपरान्त कामधेनु गाय प्रकट हुई। इस समय तक प्राप्त प्रमुख वस्तुओं को वितरण इस प्रकार हुआ। भगवान विष्णु ने लक्ष्मी और महामणि कौस्तुभ को, इन्द्र ने ऐरावत हाथी को और सूर्य ने उच्चैःश्रवा अश्व को प्राप्त किया। लम्बी प्रतीक्षा के बाद जब अन्त में समुद्र से अमृतघट लिये हुए धन्वन्तरि प्रकट हुए, तो उसे

प्राप्त करने के लिए केवल देवता और दैत्यों के बीच ही नहीं, स्वयं दैत्यों के बीच भी आपस में भयानक होड़ मच गयी। इसके बाद मोहिनी रूपधारी विष्णु और राहु केतु की घटना मत्स्य पुराण में भी श्रीमद्भागवत के समान है।

समुद्र-मंथन की इस घटना से जुड़ी एक और मान्यता भी है, जिसकी चर्चा 'हिन्दू धर्म कोष' तथा कुछ अन्य ग्रन्थों में है। इस मान्यता के अनुसार अमृत-घट को किसी तरह देवताओं से छीन कर दैत्य ले गए थे, जिसे बाद में गरुड़ वापिस ले आए। इस छीनाझपटी में जिन-जिन स्थानों पर अमृत की बूंदें पड़ीं, वे सभी तीर्थ बन गए। इस प्रकार के चार स्थान हैं- प्रयाग, हरिद्वार, नासिक और उज्जैन। इन चारों स्थानों पर निश्चित समय पर पर्व मनाने की परंपरा है। जब सूर्य तथा चन्द्र मकर राशि में हों, गुरु वृषभ राशि में हों, तब प्रयाग में कुम्भ पर्व होता है। जब गुरु कुम्भ राशि में तथा सूर्य मेष राशि में हो, तब हरिद्वार में कुम्भ का आयोजन होता है। जब गुरु सिंह राशि में हो, तब नासिक पंचवटी में और जब सूर्य, तुला राशि में स्थित हो तथा गुरु वृश्चिक राशि में हो, तब उज्जैन (अवन्तिका) में कुम्भ का आयोजन होता है। अमृत-कुम्भ (अमृत का घड़ा) से संबंधित होने के कारण ही इन पर्वों का नाम कुम्भ-पर्व पड़ा।

समुद्र-मंथन का यह प्रसंग, हमारे पौराणिक युग में अपना विशेष स्थान रखता है। अपने ढंग की यह घटना अभूतपूर्व और असाधारण थी। सब कुछ ज्यों का त्यों हुआ, यह तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु यह निश्चित लगता है कि उस युग में ऐसी कोई घटना हुई अवश्य, जब सदैव शत्रु रहने वाले, दो संप्रदायों-देवता और दैत्यों ने आपस में मिलकर और एकजुट होकर समुद्र में सोध कार्य किया होगा और वहाँ से अमूल्य सम्पत्ति प्राप्त हुई होगी। देश में राष्ट्रीय एकता का यह शायद प्रथम उदाहरण है। यह घटना इस तथ्य की ओर भी संकेत करती है कि यदि देशवासी आपसी भेदभावों को भूलकर एकजुट होकर कार्य करें, तो प्रगति का कोई भी शिखर हमारे लिए अलभ्य नहीं हो सकता।

समुद्र-मंथन की यह घटना कठोर परिश्रम की आवश्यकता पर भी बल देती है। व्यक्ति यदि एकनिष्ठ होकर लगन के साथ प्रयत्न करें, तो सफलता निश्चित है। मत्स्य पुराण में ब्रह्मा जी के ये शब्द, इस संदर्भ में उल्लेखनीय है-

मध्यतां मध्यतां सिन्धुरित्युवा च पुनः पुनः।
अवश्यमुयोगक्ता श्रीरपरा भवेत सदा।।

अर्थात् समुद्र का मंथन करते चलो। उद्योगी पुरुषों को सदैव अपार लक्ष्मी अवश्य प्राप्त होती है।

समुद्र में भी विशाल सम्पदा छिपी हुई है, इस तथ्य की जानकारी कुछ समय पूर्व तक वर्तमान युग को नहीं थी। हमारे पौराणिक युग में उस संपदा को ढूँढने और निकालने का एक सार्थक प्रयत्न किया गया था, जिसका प्रमाण समुद्र-मंथन का यह प्रसंग है। सामान्यतः यह आश्चर्यजनक बात ही लगती है कि उस जमाने में जब हमारे पास पर्यान्त साधन भी नहीं थे, तब कैसे यह सब शोध कार्य हुआ होगा।

समुद्र-मंथन की यह घटना हमारी प्राचीन कूटनीति की तरफ भी संकेत करती है। देवताओं के द्वारा अपने शत्रु, दैत्यों को मित्र बनाए जाना और उसके बाद सामूहिक प्रयत्न से प्राप्त की गयी उपलब्धियों पर स्वयं कब्जा कर लेना, उनकी कूटनीति की सफलता का प्रमाण है।

समुद्र-मंथन के कार्य में देवता और दैत्यों के सामने अनेक प्रकार की बाधाएँ आयीं, जो उन्हें विचलित करने के लिए पर्याप्त थीं। उनमें यदा कदा निराशा के भाव आए भी। फिर भी उन्होंने साहस नहीं छोड़ा। वे प्रयत्न करते रहे और अन्त में सफलता का वरण किया। मानव-जीवन में भी ऐसा ही होता है। मनुष्य के सामने अनेक प्रकार की बाधाएँ आती हैं। यदि वह उनके सामने घुटने टेक दे, तो उसकी प्रगति का पत अवरुद्ध हो जाता है। यदि वह अपना उत्साह बनाए रखे और निरन्तर संघर्षशील रहे, तो देर सबेर सफलता निश्चित है।

अर्चामूर्ति का वैभव

- श्रीमती वी.केदारम्मा

परात्पर श्रीमन्नारायण वैकुंठ में परवासुदेव; क्षीराब्धि में व्यूह वासुदेव के रूप में विराजित हैं। इतना ही नहीं, शिष्ट रक्षण, दुष्ट शिक्षण, धर्म संस्थापन के लिए राम, कृष्ण आदि अवतार लिये। दया सागर भगवान प्राण-कोटि में स्वरूप स्थिति प्रवृत्तियाँ जगाकर उन्हें सद्विषयों की ओर आकृष्ट करने अन्तर्यामी के रूप में विराजित हैं।

इस शरीर से, पर व्यूह पा नहीं सकते। भगवान विविध अवतार धारण कर अनुग्रह प्रदान करना चाहने के अवसर पर, हम जिस रूप में, जिस स्थिति में रहे हों, भगवान का अनुग्रह तो पा न सके। ''अन्तर्यामी'' स्वरूप का दर्शन केवल अष्टांग योगी ही कर सकते हैं। वे ही, ''अन्तर्यामी'' की उपासना करते हैं। भगवान का आश्रय लेकर तरने के लिए भक्तों के वास्ते एक ही एक साधन अर्चावतार है। आलयों में, घरों में विग्रह के रूप में दर्शन देते, सर्व सुलभ हो आराधनादि स्वीकार करने के रूप को ही ''अर्चामूर्ति'' के नाम से व्यवहृत करते हैं।

उस परमपद में, क्षीराब्धि में विराजित होने वाले स्वामी ही, श्रीरंगम्, वेंकटाचलं, कांची, यदाद्री इत्यादि एक सौ आठ दिव्य क्षेत्रों, वैसे ही नगरों, ग्रामों में स्थित दिव्य आलयों में, आगम शास्त्र के अनुसार प्रतिष्ठापित किये हुए अर्चामूर्तियों में भी व्याप्त हुए होते हैं। भक्तों के इच्छित रूप, अलंकार, वाहनसेवा ही अपने लिए अभीष्ट दायक हैं, ऐसा वे भावना करते हैं। अर्चकों के पराधीन हो विविध उपचार स्वीकार करते हैं। भक्तजनों की कामनाओं की पूर्ति करते जगद्रक्षण कार्यों का निर्वाह करते हैं। ऐसे अर्चामूर्ति, लक्ष्मीपति के लिए प्रणाम कहकर वात्स्यवरदाचार्य का प्रसादित (रचित) परत्वादि पंचक में मिलने वाली अर्चास्तुति इस प्रकार है।

''श्रीरंगस्थल वेंकटाद्रि करिगिर्यादौ शतेष्टोत्तरे
स्थाने ग्राम निकेतनेषु च सदा सान्निध्यमासेदुषे।
अर्चारूपिण मर्चकाभिमतित स्वीकुर्वते विग्रहं
पूजांचाखिल वांछितान् वितरते श्रीशाय तस्मै नमः।।''

यह श्लोक हम सबके लिए प्रातर्नित्यानुसंधेय योग्य है।

अष्टोत्तरशत दिव्यदेशों में विराजित अर्चामूर्तियों की आल्वारों ने और आचार्यों ने शरण ली। आल्वारों ने (श्रीरंगं, तिरुमल, कांची, तिरुनारायणपुरं इत्यादि दिव्यदेशों में विराजित अर्चामूर्तियों का मंगलाशासन करते पाशुरों का गान किया। ये पाशुर नालायिर दिव्यप्रबन्धों में दर्शन देते हैं।

जिस प्रकार सेवक प्रभु (राजा) का उचित सत्कार राजोपचार संपन्न करते हैं, उसी प्रकार भक्तजन अर्चामूर्ति के प्रति भक्ति-पूर्वक उपचार संपन्न करने चाहिए। जिस प्रकार प्रेम के साथ माँ, अपने शिशु का मुख-प्रक्षालन, स्नानादि उपचारों का निर्वाह करती, अन्न-पान आदि जुटाती है, उसी प्रकार आराधकों को चाहिए कि वे भी, शुद्ध मन से अर्चामूर्ति को सर्वोपचार समर्पित करें। इसी में अपना प्रयोजन निहित होने की भावना रखनी चाहिए। इस प्रकार भक्ति व श्रद्धा के साथ समर्पित पत्र, पुष्प आदि को अर्चामूर्ति (भगवान) प्रीति पूर्वक स्वीकारते हैं।

''या क्रियाः संप्रयुक्तास्स्युः एकान्तगत बुद्धिभिः।''
तास्सर्वा शिरसा देवः प्रतिगृह्णाति वै स्वयम्॥''

भक्तजन के त्रिकरण शुद्धि (मनसा, वाचा, कर्मणा) से समर्पित सभी कैंकर्यों को अर्चामूर्ति शिरसा स्वीकार करते हैं। इतना ही नहीं, भक्ति-भावना के साथ समर्पित चीज, अत्यल्प अथवा अणु-प्रमाण-समान का भी क्यों न हो, अर्चामूर्ति के लिए भोग्यवस्तु होगी। भक्ति के बिना समर्पित वस्तु कीमती और बड़ी भी क्यों न हो अपने लिए भोगार्ह नहीं है; ऐसा परमात्मा ने ही स्वयं प्रकटित किया।

''अण्वप्युपहृतं भक्तैः मम भोगाय जायते।
भूर्यप्य भक्तोपहृतं न मे भोगाय जायते॥''

उपर्युक्त श्लोक के द्वारा उक्त विषय ज्ञात होता है।

जो जितनी श्रद्धा व भक्ति के साथ आश्रय लेता है, उतने ही प्रेम के साथ उसे आश्रय देते हैं भगवान। ''ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'' कहकर भगवद्गीता में श्रीकृष्ण परमात्मा ने घोषित किया; यह अर्चामूर्ति की प्रेम पूर्वक आराधना को स्पष्ट करता है। कूरत्ताल्वारों ने वरदराजस्तवं में कीर्तित किया कि जो अनन्य भक्ति व मन के साथ भगवान का आश्रय लेता है, उसका गुण-दोष न गिन कर गरुत्मंत के समान उसका आदर करते हैं।

''यः कश्चिदेव यदि किंचन हन्त जन्तुः
भव्यो भजेत भगवन्तमनन्यचेताः।
तं सोयमीदृश इयानिति वाप्यजानन्
है वैनतेय सममप्युररी करोषि॥''

भगवान की आराधना करने वाले सब को कुरेशों (कूरत्ताल्वार) की दिव्य सूक्ति को हृदय में प्रतिष्ठित कर लेकर भगवत्कैंकर्य का आचरण करना चाहिए। गृह-तिरुवाराधना अथवा दिव्यालय में विलसित अर्चामूर्ति के विषय में निर्लक्ष्य-भावना नहीं होनी चाहिए। किसी भी प्रकार का अपचार घटित न होने देना चाहिए। गोदादेवी ने अर्चामूर्ति पर अचंचल विश्वास रखकर धनुर्मास-व्रत का आचरण करके अंत में अर्चामूर्ति से विवाह रचा। भगवद्रामानुजाचार्यजी ने ''अर्चामूर्ति'' के सकलोपचार सक्रम रीति से संपन्न होने के उद्देश्य से दिव्यदेशों में भगवत्कैंकर्य के विषय में एक क्रम पद्धति निर्धारित की।

श्रीरंगनाथ ने अर्चकों से, कंचि वरदराज स्वामी ने नडादूर अम्माल स्वामी से, सिंहाचलाधिपति वराह नरसिंहस्वामी ने कृष्णमाचार्य नामक संगीत-विद्वांस से अर्चामूति के रूप में रहकर बातचीत की; ऐसा इतिहास से ज्ञात होता है।

भगवान, अपने पर संपूर्ण विश्वास रखकर शेषभूत हो, सकलोपचार संपन्न करनेवाले अनन्य भक्तों का अर्चारूप में भी कोंगुबंगारम (पल्ले में बांधे सोने के समान) के रूप में विराजित हो योग क्षेम वहन करते हैं।

तेलुगु मूल - समुद्राल शठकोपाचार्य
साभार - आलोचनामृतं

हरित तोरण

नव चेतना मास चैत्र

तेलुगु मूल - डॉ.के.रामकृष्ण

हिन्दी अनुवाद - श्री पी.वी.लक्ष्मीनारायण

हर मनुष्य में शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध तन्मात्राएँ पंच-भूत बनकर अंतर्लीन होकर रहते हैं। यहीं पंच-भूत भूमि, जल, अग्नि, वायु, आकाश नाम के रूप में बाह्य में प्रकटित होते हैं। ऐसे अंतर, बहिर्रूपों में हुए पंच-भूतों को मनोनेत्रों से दर्शन कर, लौकिक जीवन को सफल बनाते हुए, कैवल्य के लिए सोपान बना लेने की जिम्मेदारी आदमी पर होता है। देनंदिन जीवन के हर कदम पर प्रकृति का अनुसरण करते हुए, प्रकृति-शक्तियों के मेल-मिलाप से जीवन के लक्ष्य पर पहुँचना - अपने प्राचीनों का निर्देश है।

इस क्रम में भारतीय जीवन के अत्युन्नत कोण को समुन्नत ढंग से आविष्कृत करने का पवित्र मास है चैत्रमास। इस माह के आगमन से ज्यों तरु पल्लवित होते हैं त्यों मानव के हृदयों के वैरुध्य, वैषम्य, वैमनस्यताएँ हट कर, नव-जीवन की कांतियाँ प्रसरित होती हैं।

वसंत - शोभा

वसंतकाल में प्रकृति सारी हरियाली से छायी हुई होती है। जूही की कलियों का सुगन्ध हर मन को व्यस्त बनाता है। कोयल के गाने अलौकिक आनंद देते हैं। बसंती ऋतु में हर पेड़ पुहुप-सिंगार करेगा और खिले हर पुष्प में मधु का भंडार निक्षिप्त होकर रहेगा। इसी कारण बसंत ऋतु ''मधुमास'' कहलाता है। कालिदास-कृत 'ऋतु संहार' (तेलुगु) काव्य में मधुमास की शोभा व गरिमा का अनंत वर्णन किया गया है।

'सुरभी' नाम से भी वसंत मास का वर्णन 'अमरकोश' ग्रन्थ में वर्णित किया गया है। जिसका अर्थ इच्छा-पूर्ति करने वाला बताया गया है। तैत्तरीय ब्राह्मण में, 'ऋतूनां मुखो वसंतः' कहा गया है। अर्थात् सब ऋतुओं में बसंत का ही अग्रस्थान है।

'वसति कामोस्मिन्निति' का मतलब है, बसंती शोभा को काम-प्रकोप करने की ताकत होती है। दाम्पत्य सुख के अनुभोग के लिए वसंत ऋतु काफी अनुकूल होता है। ऐसे जीवन के गमन में 'बसंत ऋतु' एक रसमय, आनंददायी पड़ाव बन कर रह जाता है।

उगादि

मगर फिर, चैत्रमास कहते ही सबको याद आने वाला पर्व 'उगादि' है। उगादि का मतलब नये साल का आरंभ है। युग का मतलब वर्ष होता है। करीब दो हजार साल पूर्व विक्रमादित्य नामक एक प्रतापी तथा प्रजाभिमानी राजा, जो आन्ध्र-

आगामी दिनों में संभवित विघ्न और आटंकों के निवारण-हेतु, उगादि के पर्व दिन पर गणपतिबप्पा का हर कोई पूजन करता है। गणपति-अर्चना के साथ-साथ ग्रह-संबंधी दोषों के निवारण में नवग्रह-शांति कराते हैं और नवग्रहों की मंडली की परिक्रमा करते हैं। मनोनिश्चलता, कार्य-साधना इन पूजाओं का आशय होता है।

कर्णाटक तथा महाराष्ट्र राज्यों का प्रायः पालक था, राज-तिलक मना कर इसी दिन-याने चैत्रमास की प्रतिपदा पर राज-गद्दी का आरोहण किया था।

उस दो हजार साल पूर्व सिंघासन अधिरोहित उस राजा विक्रमादित्य की कितनी धाक थी अथवा वह कितना जन-रंजक शासक था कि इतने सालों के गुजर जाने के बावजूद भी, आज भी आन्ध्र, कर्णाटक और महाराष्ट्र में वह पुण्य तिथि ''उगादि'' पर्व दिन के नाम से विख्यात हो कर मनाया जाता हुआ आ रही है।

उगादि पर्वदिन पर...

तो चैत्रमास प्रतिपदा उगादि कहलाती है। उस पावन संरंभी उगादि पर अवश्य किये जाने वाले कुछ कृत्यों का यहाँ जिक्र किया गया है–

१. प्रतिगृह ध्वजारोहण

उगादि नयेपन का संकेत है। अतः हर घर पर भगवध्वज (भगवान का झंडा) फहराया जाना चाहिए। नये साल में किये जाने वाले मुख्य कार्यों की गिनती की पहचान व संकेत के रूप में इस ध्वज को फहराना चाहिए। ध्वज हमेशा एक लक्ष्य व कृत्य का निर्देश देता है। अतः उगादि के दिन लक्ष्य-साधन के विजय संकेत के रूप में ध्वजा को फहराना चाहिए, जो सामान्यतया कषाय-रंग में हो।

२. तैलाभ्यंगन

उगादि महा पर्व के दिन हर आन्ध्रा का नागरिक प्रातःकाल में ही उठ जाता है। आपादमस्तक तिलहनों का तेल से मर्दन कर, रीठा के रस से अभ्यंगन स्नान (सिरोस्नान) करता है। तिलहनों का तेल तथा रीठा में हुए औषध-गुण आदमी को स्वास्थ्य का चंगा प्रदान करेंगे।

अभ्यंगन स्नान शरीर से आवरित जड़त्व को दूर कर, शरीर के साथ-साथ मन को भी चेतना-भरित बनाता है। अतएव हर नागरिक को चाहिए कि वह उगादि के पावन महा पर्व पर अवश्य अभ्यंगन स्नान करें।

३. छत्र, चामर स्वीकृति

इसका मतलब है कि इस दिन नया छतरा, व हाथ-पंखे को खरीदना। बसंत के आगमन के अनंतर आ धमकने की गर्मी को मद्देनजर रखते हुए अपने बुजुर्गों ने उगादि पर्व दिन पर नये छतरे तथा पंखे को खरीदने के आचार का निर्देश किया है। इसका यह निर्देश हुआ कि भारतीय त्योहारों के नेपथ्य में भौतिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का ध्यान रखा गया है।

४. दमनेन ब्रह्म-पूजा

उगादि के शुभारंभ के तौर पर की जाने वाली इष्ट देवता की पूजा अधिकतया परिमलभर पत्र और पुष्पों से की जाती है। चैत्र शुद्ध पाड्यमी से पूर्णिमा तक १५ दिनों में १५ देवताओं की पूजा-अर्चना की जाती है। यह देवता-अर्चना का क्रम-प्रतिपदा-ब्रह्म, विदिया-उमाशंकर दम्पती, तृतीयाँ-लक्ष्मीश्रीनिवास दम्पती, चतुर्थी-गणेश, पंचमी-नागदेवता, कुछ इस प्रकार हो जाता है।

५. महाशांति-पूजाएँ

आगामी दिनों में संभवित विघ्न और आटंकों के निवारण-हेतु, उगादि के पर्व दिन पर गणपतिबप्पा का हर कोई पूजन करता है। गणपति-अर्चना के साथ-साथ ग्रह-संबंधी दोषों के निवारण में नवग्रह-शांति कराते हैं और

नवग्रहों की मंडली की परिक्रमा करते हैं। मनोनिश्चलता, कार्य-साधना इन पूजाओं का आशय होता है।

६. पंचांग-पूजा और श्रवण

तिथि, वार, नक्षत्र, योग और करणों वाले पाँच अंगों को पंचांग कहा जाता है। शास्त्र के विधान के कहे अनुसार, उगादि के दिन बंधु-मित्रों से मिल कर सुबह देवताओं की अर्चना कर, दोपहर को पकवानों से युत भोजन करना चाहिए। शाम को मंदिर जाना अवश्य है, जहाँ एक दैवज्ञ नये साल का पंचांग पढ़कर, वहाँ इकट्ठे गाँव के लोगों को सुनाता है।

उगादि के दिन पंचांग के श्रवण से हमारा शुभ होयेगा। पंचांग को सुनना मंगलदायक है। पंचांग-श्रवण से अपना शत्रु-नाश होता है। गोदान किये जितना फल मिलता है। आयु बढ़ती है। सकल कार्यों की सिद्धि होयेगी।

७. निंब-कुसुम भक्षण

निंब-कुसुम का अर्थ है नीम का फूल। उगादि के दिन छोटे-बड़े मिल कर इष्टपूर्वक खाने वाली चटनी यही एक ''उगादि-पच्चड़ि'' है।

उगादि-पच्चड़ि एक विलक्षण चटनी है, जो आन्ध्र-प्रान्त के लोग उगादि पावन पर्व पर जरूर स्वीकारते हैं। उगादि - पच्चड़ि इस पावन पर्व का एक विलक्षण संकेत बना हुआ है। उगादि-पच्चड़ि में छः रुचियाँ होती हैं - नमक, तीखा, मीठा, कषाय, खट्टा और कड़ुआपन। उगादि-पच्चड़ि अमिया, हरीमिर्च, नयी इमली, निंब-कुसुम, नया गुड़ और नमक से बन कर, महा स्वादिष्ट रहता है।

षड्रुचियों वाली उगादि-पच्चड़ि इस दिन खाने का यह संदेह देता है कि जीवन इन छहों रुचियों का बना हुआ होता है, जिसे मैं अपने तन और मन के साथ उसे स्वीकार करूँगा।

८. राज-मित्र-संदर्शन

उगादि से साल शुरू होता है, अतएव, अपने मनुष्यों के बीच सत्संबंदों के लिए हर नागरिक को अपने मित्रों, बड़ों तथा अपने सगे-संबन्धियों से मिले। मिलकर एक दूसरे के योग-क्षेम पूछे। शुभाकांक्षाओं को व्यक्त करना चाहिए। इससे मनुष्यों के बीच आत्मीयता, अनुराग तथा प्रेम शाश्वत ढंग से कायम होकर रहते हैं।

१०. वासंत-नवरात्र-कलश-पूजा

उगादि से नौ दिनों की काल - व्यवधि को आन्ध्र प्रान्त में ''वसंत नव-रात्रियाँ'' कहते हैं। शास्त्र ने इन दिनों में आचरित करने की विधि को बता दिया है। इसके अनुसार आन्ध्र के अंदरूनी भागों के कुछ ब्राह्मण परिवार के लोग घर के अंदर के देवता-मंदिरों में कलश-स्थापना कर, उसे आगत श्रीमन्महाविष्णु समझ कर, उसकी आराधना करते हैं। यह कलश-पूजा नौवे दिन तक चलती है। इससे विश्वास किया जाता है कि घर में समृद्धि आकर मंगलमय भावना अंकुरित होती है।

उगादि कवि-सम्मेलन

उगादि मानसिक उल्लास व मनोरंजन का भी त्योहार है। उगादि पावन पर्व पर सुबह आनंद और उत्साहों के बीच ''कवि-सम्मेलन'' होता है। यह कवि-सम्मेलन गाँव के ग्रन्थालय, मंदिर, शादी-मंटप या किसी सार्वजनिक प्रदेश में आयोजित किया जाता है। पाँच-दस स्थानिक कवि वहाँ इकट्ठा होकर उगादि पर्व का आह्वान करते हुए मनोल्लास-पूरित भावुक कविताओं का पठनकर, लोगों का मनोरंजन करते हैं। अंत में गाँव के लोग कवियों का यथा पूर्वक सम्मान करते हैं।

उगादि-चारित्रक, पौराणिक गाथाएँ

ब्रह्मांड पुराण बताता है कि जगत के सृष्टिकर्ता ब्रह्म ने चैत्रमास की शुद्ध पाड्मी की अरुणोदय बेला में इस समस्त स्थावर-जंगम जगत की सृष्टि करना आरंभ किया था।

पुरु-वंश का वसुराजा ने देवेन्द्र के अनुग्रह से महिमान्वित वस्तुओं का संपादन कर, चैत्र शुद्ध पाड्यमी के दिन अपना राजपट्ट स्वीकार कर राज-सिंघासन का अधिरोहण किया था।

शक-पुरुष शालिवाहन ने भी इसी दिन अपना राज-तिलक मनाया था।

महा पुरुष श्रीरामचन्द्र भी, रावण-संहार के अनंतर, सीता मैय्या के समेता चैत्र शुद्ध पाड्यमी की शुभ तिथि पर ही अयोध्यानगरी वापस लौटा था।

चैत्रमास में पूजाएँ

ऋतुओं का राजा बसंत चैत्रमास के प्रथम दिन से आरंभ हो कर, सारी प्रकृति में एक नयी सजगता लाता है। इस सजगता के आमोद में हमें अभ्यंगन स्नान का आचरण करना चाहिए। उगादि पच्चडि की तैयारी और निवेदन आदि भी पूजा के विधान में भाग हैं।

विष्णु पुराण बताता है कि उगादि के पावन पर्व दिन पर उपवास-व्रत का आचरण कर, सायंकाल ब्रह्मदेव की पूजा-उपासना करने से सालभर सुख-संपदाओं की सिद्धि मिलेगी।

उगादि पर्वदिन पर ही ''मत्स्यजयंती'' भी पड़ती है। अतः इस दिन समझा जाता है कि श्रीमन्महाविष्णु ने मत्स्यावतार का धारण किया था। इसलिए लोग इस दिन भगवान श्री महाविष्णु के मत्स्यावतार रूपी चित्र पूजा मंदिर की दीवार पर लिख कर उसे पूजते हैं।

देवी भागवत बताता है कि शरत्, वसंत काल प्राणियों को यम-बाधाएँ देते हैं। इन दुर्गतियों से विमुक्ति पाने के लिए वसंत नवरात्र उत्सव मना कर, देवताओं की आराधना कर, समस्त ईति-बाधाओं से विमुक्ति पाया जाता है।

उगादि के दूसरे दिन अरुंधती व्रत और सौभाग्य गौरीव्रत का आचरण करने से सुमंगलियों को शुभाशासन मिलता है। सूर्यास्तमय के बाद बालचंद्र की पूजा की जाती है, जिसे ''बालेन्द्र-व्रत'' कहते हैं। स्मृति कौस्तुभ बताता है कि इस बालेन्दु व्रत से चन्द्राष्टम से शुद्धि मिलती है और चन्द्रभगवान का अनुग्रह प्राप्त होता है।

चैत्रमास की हर तिथि में त्योहार व शुभ-संदर्भों की भरमार है। चैत्रमास सचमुच शीर्षमास है। अनेकों प्राकृतिक, पौराणिक व ऐतिहासिक घटनाओं का चैत्रमास केंद्र बिन्दु है। वह पूरे साल-भर का मुकुट है। उसी दिन समस्त प्रकृति में हरियाली का नांदी-प्रस्ताव होता है। बसंती शोभा का, चैत्रमास शुक्लपक्ष प्रतिपदा के दिन मुकुट-धारण होता है।

चैत्रमास पंचमी बसंत-पंचमी के नाम से पुकारी जाती है। नागपंचमी भी इसी दिन है। नागपंचमी के दिन नाग-देवताओं का पूजन कर, उन्हें दूध और घी का निवेदन करने से हमें नाग-दोष का परिहार मिलता है।

ऐसे चैत्रमास की हर तिथि में त्योहार व शुभ-संदर्भों की भरमार है। धर्मराज-दशमी, अनंग-त्रयोदशी, शैव-चतुर्दशी, वराहजयंती आदि अनेक विशेष पर्वदिन चैत्रमाह को शिखरायमान बना रहे हैं।

परिपूर्ति

चैत्रमास सचमुच शीर्षमास है। अनेकों प्राकृतिक, पौराणिक व ऐतिहासिक घटनाओं का चैत्रमास केंद्र बिन्दु है। वह पूरे साल-भर का मुकुट है। उसी दिन समस्त प्रकृति में हरियाली का नांदी-प्रस्ताव होता है। बसंती शोभा का, चैत्रमास शुक्लपक्ष प्रतिपदा के दिन मुकुट-धारण होता है।

इतने प्रमुख दिन के शुभ अवसर पर हमें अभ्यंगन स्नान कर, प्रकृति की आराधना कर, देव-प्रमुखों को अंजली देकर-दोपहर को बन्धुमित्रों से मिलकर मृष्टान्न भोजन कर-उगादि पावन पर्व का आह्वान करना चाहिए।

अपनी पावन महत्ता के कारण उगादि केवल आन्ध्र, कर्णाटक, महाराष्ट्र का ही नहीं, बल्कि समूचे हिन्दुस्तान का पावन पर्व है। इसमें कोई संदेह नहीं।

कृतयुग से ओंटिमिट्टा में कोदंडराम

तेलुगु मूल - श्री के.नरसिंहुलु

हिन्दी अनुवाद - डॉ.बी.के.माधवी

ओंटिमिट्टा के मंदिर में सीता, लक्ष्मण सहित श्री कोदंडरामस्वामी विराजमान होने का बीज कृतयुग में ही पड़ा है। हिमालयों में रहते हुए जांबवंत तप करने के लिए स्वयं हिमालय को छोडकर दक्षिण देश की ओर आये थे। वहाँ एक छोटा-सा पहाड है, वहाँ भालुओं का झुंड संचरित करता रहा। सारी ओर बिल्व वृक्षों का वन व्याप्त रहा। जांबवंत को यहाँ का प्रदेश अच्छा लगा। उस पहाड पर उन्होंने एक कुटीर बनवाया। उसके नजदीक में दूध के पहाड से निरंतर पानी बहती थी। इससे ज्यादा क्या चाहिए? जांबवंत को। अपने जाति के भालुएँ उनकी सहायता की। उन्होंने सौ साल तक उत्तर दिशा की ओर बैठकर तप किया। इस तप के लिए उसने ''राम तारक मंत्र'' को चुन लिया। उस मंत्र के द्वारा श्रीराम के दिव्य साक्षात्कार को पाने का निर्णय लिया। राम तारक मंत्र श्रीरामचंद्र से संबंधित है। आप सोचेंगे कि तब तक त्रोतायुग नहीं आया। अब तक २७ महायुग बीत गये। २८वां महायुग चल रहा है। हर एक महायुग में चार युग रहते हैं। यानि कि अब तक २७ त्रेतायुग बीत गये। उसके अनुसार २७ श्रीरामचंद्र इस पृथ्वी पर आये होंगे। उन श्रीरामचंद्र अलग-अलग नहीं थे। सब एक ही थे। सब श्री महाविष्णु के अवतार ही थे। इसलिए रामतारकमंत्र की आलोचना अब नहीं रहेंगा। जांबवंत रामतारकमंत्र का जप करके श्रीरामचंद्र का साक्षात्कार पाया था। जांबवंत जिस छोटी-सी पहाड पर बैठकर तप किया था उसके सामने रहे छोटे-छोटे पत्थरों का पहाड (मिट्टा) के ऊपर से श्रीरामचंद्र दर्शन देकर जांबवंत को आशीर्वाद दिया। श्रीरामचंद्र दर्शन दिये प्रदेश मिट्टा के ऊपर विराजमान प्रदेश ही आजा के दूसरे कलियुग वैकुंठ है। ओंटिमिट्टा के श्री कोदंडरामस्वामी मंदिर को कृतयुग में ही नहीं त्रोतायुग में भी प्रातिपदिक बना है।

अयोध्या नगर में श्रीरामचंद्र पट्टाभिषेक कर रहे थे। कैकेयी माता बीच में रुकावट डाली है। लोगों को बादल का गर्जन जैसे सुनाई पडा। श्रीरामचंद्र सीता और लक्ष्मण के साथ चौदह साल अरण्यवास के लिए जा रहा था। वे वल्कल वस्त्र पहन लिए। श्रीरामचंद्र अपने साथ कोदंड को रखा था। लक्ष्मण ने बाणों को हाथ लिए।

चौदह साल के अरण्यवास में श्रीरामचंद्र ने थोडे समय तक जांबवंत के दर्शन दिए गए प्रदेश में निवास किया था। इस जगह मुनिगण तप करते रहे थे। जहाँ श्रीराम रहता था उस जगह के पश्चिम दिशा की ओर मृकंडु महामुनि आश्रम

रहता था। अब भी हम इस आश्रम को देख सकते हैं। मुनियों के तप में राक्षस विघ्न डालते रहे। ऐसे दुष्ट जनों को संहार करने के लिए श्रीरामचंद्र यहाँ वनवास करने आये थे।

एक बार गर्मी के दिनों में पृथ्वी पर एक बूँद वर्षा भी नहीं पडा। सारे पशु-पक्षी प्यास से तडपती रही। सीतादेवी ने यह देखकर श्रीरामचंद्र से पूछा - "हे स्वामी! यहाँ के जीव-जंतु प्यास कैसे बुझा सकते हैं? श्रीरामचंद्र ने अपने कोदंड लेकर बाण छोडा। बाण पृथ्वी में जाकर फिर वापस आया। बाण के पीछे पाताल गंगादेवी ऊपर आयी। सीतादेवी, श्रीराम और लक्ष्मण तीनों ने उस जल को स्वीकार किए। उस धारा आज भी 'रामतीर्थ' के नाम से हमें दर्शाती है।

सीता-राम लक्ष्मण दूसरे जगह गए। सीतादेवी को रावणासुर ने अपहरण किया था। राम-सुग्रीव का मैत्री हुआ। हनुमान, जांबवंत दोनों ने सीता माता को खोजने में लग गए। जांबवंत ने कृतयुग में उसको श्रीरामचंद्र ने दर्शन दिए थे वहाँ आया था। उस रात वही सोया। सुबह उस पृथ्वी का नमस्कार करके सीता माता को खोजने के लिए निकल पडे। कलियुग में यहाँ मंदिर का निर्माण हुआ। वनवास करते समय के सीता-राम, लक्ष्मण यहाँ के मंदिर में विराजमान हैं। स्थानिक लोग इसी कारण से ओंटिमिट्टा के मंदिर को दूसरी अयोध्या कहते थे।

कलियुग ई.सन् १४वीं शताब्दी में विद्यारण्य महर्षि के आशीर्वादों से अक्कराय, बुक्कराय ने विजयनगर साम्राज्य की स्थापना की। दक्षिण भारतदेश में विदेशियों के आगमन को रोकना, हिन्दू धर्म को जीवित रखना उनका लक्ष्य था। विजयनगर साम्राज्य दिन-ब-दिन बढता रहा। उदयगिरि को केंद्र बनाकर बुक्कराय के भाई कंपराय पूरब के प्रांत का पालन करने आया। उसने एक बार ओंटिमिट्टा प्रांत के यहाँ आया। ओंटडु, मिट्टडु नामक बोय (वाल्मीक) नायकों ने कंपराय को स्वागत किए। रामतीर्थ के जल से उनको आतिथ्य का प्रबंध किए। कंपरायलु ने पश्चिम की दिशा में पहाडों से झील (जलधाराएँ) कहीं-कहीं पत्थरों के समूह से रहे उस जगह को देखकर यहाँ सरोवर निर्माण के लिए अनुकूल समझा। ओंटडु-मिट्टडु ने इस जगह की प्रशस्ति के बारे में बताये। इतना ही नहीं कृतयुग में जांबवंत को श्रीराम का दर्शन भाग्य, त्रेतायुग में इस जगह श्रीराम का वनवास करना, जांबवंत सीता माता को खोजने के लिए निकलते समय यहाँ आकर सोना और उन सारे प्रदेशों का परिचय कराये। कंपराय ने रामकुटीर के जगह मंदिर निर्माण करने के लिए स्वीकार किया। मंदिर, सरोवर निर्माण का काम उन वल्मीक भाइयों को सौंपा।

ई.सन्.१३५६ में बुक्कराय ने चक्रवर्ती के रूप में काशी-रामेश्वर यात्रा की। यात्रा मार्ग में ओंटिमिट्टा में सीता-राम, लक्ष्मण के एकशिला विग्रह की प्रतिष्ठा की। विद्यारण्य महर्षि के पर्यवेक्षण में आलय की प्रतिष्ठा हुई।

श्रीराम ने कृतयुग में जांबवंत को वर देने के लिए यहाँ आया था। त्रेतायुग में मुनियों के याग रक्षण के लिए दुष्टजनों को संहार करने के लिए यहाँ आये थे। अब कलियुग में धर्म स्थापना के लिए ओंटिमिट्टा के मंदिर में विराजमान होकर बैठ गया।

बुक्कराय के काल में ओंटिमिट्टा का मंदिर इतना बडा नहीं था। उस समय गर्भालय, अंतराल, मुखमंडप, गर्भालय के ऊपर छोटा-सा गोपुर मात्र ही थे।

ई.सन्.१६०० से लेकर मंदिर की वृद्धि हुई। सिद्धवट का पालन किये मट्लराजुओं जो अनंतराज, उनका पुत्र तिरुवेंगलनाथ, उनका पुत्र कुमार अनंतराज तीन दशाब्दियों तक मंदिर को अत्यंत वैभव के साथ रखे। रंगमंटप, विशाल प्रांगण, किले के दरवाजे के जैसे महाप्राकार, तीन गालिगोपुर उनके समय में ही निर्माण हुआ है। मंदिर के बाहर संजीव रायस्वामी का मंदिर, रथशाला, रथ, रामतीर्थ का निर्माण किये हैं। रंगमंटप को ३२ अत्यंत दृढ़ पत्थर के खंबों पर शिल्पकला शोभित के रूप से देखनेवालों के मन लुभाने के जैसे निर्मित किये हैं। मंदिर के अंदर आग्नेय दिशा में रसोई, नैरुति दिशा में कल्याण मंटप, दक्षिण की दिशा में २ एदुर्कोलु मंटपों को अत्यंत रमणीय रूप से निर्माण किये हैं।

पूरब की ओर से ३२ सोपानों को चढाते हुए स्वामी के दर्शन करने जाते समय हमें लगता हैं कि - ''क्या हम वैकुण्ठ का प्रयाण कर रहे हैं?'' पूरब के द्वार में आध्यात्मिकता का परिचय देते हुए शिल्प, भागवत कथाएँ, सीतामाता के तलंब्रालु (शादी के समय वर-वधू दोनों एक-दूसरे के सर पर दोनों हाथों से तलंब्रालु (चावल में हल्दी मिलाकर तैयार की गयी अक्षतान) डालने की विधा) दृश्य यात्रियों को लुभाता है।

मंदिर में नित्य कैंकर्य, साल भर अन्य उत्सवों का निर्वहण चलता रहता है। चैत्र शुद्ध नवमी के दिन से दस दिन ब्रह्मोत्सवों का निर्वहण होता है। नवमी के दिन श्रीरामजयंती के साथ पोतना के जयंती का भी निर्वहण करते हैं। चतुर्दशी के रात श्रीराम कल्याणोत्सव करते हैं। अगले दिन रथोत्सव होता है। देश के कोने-कोने से भक्तजन इस उत्सव में भाग लेते हैं। ओंटिमिट्टा के मंदिर की विशेषता यह है कि यहाँ चैत्र शुद्ध चतुर्दशी के रात चाँदनी की रोशनी में कल्याणोत्सव का निर्वहण करते हैं। सीतादेवी का जन्म उत्तर फल्गुनि नक्षत्र में हुआ था। उनके नक्षत्र पर सीता-राम का विवाह निश्चय हुआ था। उस त्रेतायुग काल के रिवाज के अनुसार ओंटिमिट्टा के मंदिर में विद्यारण्य स्वामी ब्रह्मोत्सवों का निर्वहण किया था।

वासुदासु की सेवा

बीसवीं शताब्दी के पहले दशक में वाविलिकोलनु सुब्बाराव ने ओंटिमिट्टा मंदिर के पुनर्निर्माण का संकल्प लिया। श्रीराम की सेवा करने के लिए ओंटिमिट्टा आये थे। अपने पूरे जायदाद को स्वामी के नाम पर लिख दिये। अंग वस्त्र धारण करके नारियल के कटोरे लेकर याचना की। उसके द्वारा मिल गये हजार रुपयों से मंदिर में मरम्मत करवाये। नये भवनों का निर्माण किये। ब्रह्मोत्सव, नित्योत्सवों का निर्वहण किये। नये रथ बनवाये। उनकी सेवा निरुपमान है। वे महापंडित महाकवि है। आपने अपुरूप धार्मिक भक्ति ग्रंथ, पंडित-पामर लोग आसानी से समझने के जैसे रचना किये हैं। वाल्मीकि रामायण को तेलुगु में लिखकर उसको 'मंदरं' नाम से व्याख्यान किये। वाविलिकोलनु सुब्बाराव लोगों के द्वारा वाविदासु नाम से पुकारा गया।

२०१४ में आंध्रप्रदेश दो भागों में विभक्त हुई। भद्राचल का श्रीराम मंदिर तेलंगाणा में रह गया। आंध्रप्रदेश के लोग, सरकार ने मिलकर ओंटिमिट्टा के श्रीराम मंदिर को अपनाये। २०१५ मार्च, अप्रैल महीनों में हुए ब्रह्मोत्सवों को राष्ट्र सरकार ने अधिकारिक रूप से निर्वहण किये। अगले साल से मंदिर के ब्रह्मोत्सव अन्य आदि कार्यक्रमों का निर्वहण तिरुमल तिरुपति देवस्थान कर रही है।

मंदिर की सर्वतोमुख अभिवृद्धि

तिरुमल तिरुपति देवस्थान १०० करोडों से विकास की प्रणालिका रची। सीताराम कल्याण के लिए कडपा को जाने के मार्ग में विशाल प्रांगण में कल्याणवेदिका का निर्माण कर रहा है। उसमें आवास गृहसमुदाय तैयार हुआ है। २०१६ से करीब लाख भक्तजन कल्याणोत्सव देखने के लिए तात्कालिक प्रबंधों से कल्याणोत्सव नभूतो के जैसे चल रहा है।

मंदिर की परिक्रमा में सौंदर्य

मंदिर के दक्षिण की ओर रहे सरोवर को बंद किये गये। पृथ्वी को साफ किये। उद्यानवन बनवाये। मंदिर के चारों ओर तिरुमाडवीथियों का निर्माण किये। मंदिर की पूरब दिशा में पुष्करिणी तैयार हुई। मंदिर में अलंकरण, पूजाएँ, वेदपठन, भक्तजनों को प्रसाद वितरण करने के कई प्रणालिकाओं से श्रवनानंद, नयनानंद करवा रहे हैं। संजीवराय स्वामी के मंदिर का आधुनीकरण करवाये। मंदिर के प्रांगण में प्रबंध किए गए बिजली के अलंकरण से मंदिर रात में चमकते हुए शोभायमान रूप से रहा है।

हर महीने श्रवणा नक्षत्र के दिन होनेवाले सीता-राम कल्याणोत्सवों में, हर शनिवार के अभिषेक उत्सवों में भक्तजन अधिक संख्या में भाग ले रहे हैं। हर शनिवार तिरुमल से लड्डु प्रसाद आ रहा है। तिरुमल तिरुपति देवस्थान स्वयं ओंटिमिट्टा मंदिर की शोभा, ख्याति बढ़ाने के लिए विशेष कृषि कर रही है।

अप्रैल महीने का राशिफल

- डॉ.केशव मिश्र

मेषराशि - मेषराशि वालों के लिए यह महीने सामान्य सुख तथा लाभकारी रहेगा। मानसिक स्वास्थ पर ध्यान देना चाहिए। आर्थिक स्थिति में उतार-चढ़ाव रहेगा।

वृषभराशि - शनि की ढैय्या के प्रभाव बाधा पूर्ण रहेगा। अधिक प्रयास करने पर भी उचित फल प्राप्ति में बाधायें आयेगी। शुभ कार्यों में धन का व्यय होगा। शत्रुओं की संख्याओं में वृद्धि होगी जिससे मन खिन्न हो सकता है।

मिथुनराशि - यह महीने आपके लिए अधिकांशतः लाभ एवं उन्नति कारक होगा। नवीन सम्पत्ति खरीदने के लिये स्थिति अच्छी रहेगी। विद्यार्थी वर्ग का पढ़ाई के प्रति रुझान बढ़ेगा।

कर्कराशि - इस महीने लाभ एवं स्वास्थ की दृष्टि से उतार-चढ़ाव रहेगा। अनावश्यक भागदौड़ तथा खर्च की स्थिति से बचें। सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि होगी।

सिंहराशि - यह महीने आपके लिए साधारण लाभ एवं उन्नति कारक होगा। भाई-बहनों के साथ सहयोगात्मक व्यवहार बना रहेगा। सन्तान पक्ष के साथ भावनात्मक ताल मेल बनाये रखें।

कन्याराशि - शनि की ढैय्या के प्रभाव के कारण बाधा आयेगी। कोर्ट-कचहरी के कार्य में मध्यम गति से आगे बढ़ेंगे। घर में मांगलिक कार्य सम्पादन होंगे। अतीत के अनुभवों से सबक लें।

तुलाराशि - यह महीने आपके लिए उन्नति कारक होगा। योजनायें सफल होंगी। देव कार्यों में धन व्यय करें लाभदायक सिद्ध होगा। कभी कभी अत्यधिक धन प्राप्ति एवं व्यय होगा। जिस कारण आप अधिक व्याकुल रह सकते हैं। ऊर्जा से भरपूर रहेगा पूरा महीना।

वृश्चिकराशि - यह महीने आपके लिए उन्नति कारक होगा। खानपान में ध्यान रखें। विद्यार्थी वर्ग को अध्ययन में अधिक परिश्रम करने की आवश्यकता रहेगी। वैवाहिक जीवन सामान्य रहेगा।

धनुराशि - शनि की साढ़ेसाती का प्रभाव उग्र रहेगा। पारिवारिक कार्यों से दूर रहें। वैवाहिक सम्बन्ध मध्यम रहेगा। भूमि-मकान, वाहन खरीद बिक्री में सावधानी रखनी चाहिए।

मकरराशि - शनि की साढ़ेसाती का प्रभाव रहेगा। कुछ बाधाओं एवं संघर्ष के बाद सफलता मिलेगी। कृषि, पशुपालन लेन-देन कर्ज वाहन चालक व्यापारियों के लिए मध्यम समय। परिवार में मांगलिक कार्य सम्पादन होंगे।

कुम्भराशि - यह महीने आपके लिए लाभ एवं सुखदायक रहेगा। स्वास्थ अनुकूल रहेगा। तीर्थयात्रा का योग बन रहा है। रत्न व्यापार से लाभ उत्तरोत्तर धन वृद्धि। रुका हुआ धन वापस होगा।

मीनराशि - यह महीने आपके लिए लाभदायक सिद्ध होगा। सम्पत्ति के क्रय-विक्रय के लिये स्थिति शुभ रहेगी। नये कार्य आरम्भ होंगे। भूमि खरीदने के योग बनेंगे। कोर्ट कचहरी के कार्यों में लाभ प्राप्त होंगे।

तिरुमल तिरुपति देवस्थान, तिरुपति

सप्तगिरि

(आध्यात्मिक मासिक पत्रिका)

चंदा भरने का पत्र

१. नाम : ....

(अलग-अलग अक्षरों में स्पष्ट लिखें) ....

....

पिनकोड ....

मोबाइल नं ....

२. वांछित भाषा : ☐ हिन्दी ☐ तमिल ☐ कन्नडा ☐ तेलुगु ☐ अंग्रेजी ☐ संस्कृत

३. वार्षिक / जीवन चंदा :

४. चंदा का पुनरुद्धरण :

(अ) चंदा की संख्या :

(आ) भाषा :

५. पेय रकम :

६. पेय रकम का विवरण :

नकद (एम.आर.टि. नं) दिनांक :

धनादेश (कूपन नं) : दिनांक :

मांगड्राफ्ट संख्या : दिनांक :

प्रांत :

दिनांकः चंदा भरनेवाला का हस्ताक्षर

- वार्षिक चंदा : रु.६०.००, जीवन चंदा : रु.५००-००
- नूतन चंदादार या चंदा का पुनरुद्धार करनेवाले इस पत्र का उपयोग करें।
- इस कूपन को काटकर, पूरे विवरण के साथ इस पते पर भेजें–
- संस्कृत में जीवन चंदा नही है, वार्षिक चंदा रु.६०-०० मात्र है।

प्रधान संपादक, सप्तगिरि कार्यालय, के.टी.रोड,

तिरुपति-५१७ ५०७. (आं.प्र)

नूतन फोन नंबरों की सूचना

चंदादारों और एजेंटों को सूचित किया जाता है कि हमारे कार्यालय का दूरभाष नंबर बदल चुका है और आप नीचे दिये गये नंबरों से संपर्क करें–

कॉल सेंटर नंबर

0877 - 2233333

चंदा भरने की पूछताछ

0877 - 2277777

अर्जित सेवाएँ और आवास के अग्रिम आरक्षण के लिए कृपया इस नंबर से संपर्क करें–

STD Code: 0877

दूरभाष :

कॉल सेंटर नंबर :

2233333, 2277777.

Edited and Published on behalf of T.T.Devasthanams by **Dr.K.Radha Ramana, M.A., M.Phil, Ph.D.,** Chief Editor, T.T.D. and Printed at T.T.D. Press by **Sri R.V.Vijaykumar,** B.A., B.Ed., **Dy.E.O.,** (Publications & Press), T.T.D. Press, Tirupati-517 507.

तिरुमल तिरुपति देवस्थान

'सप्तगिरि' आध्यात्मिक मासिक पत्रिका (तेलुगु, तमिल, हिन्दी, अंग्रेजी, कन्नड़, संस्कृत)

घर-घर तक 'सप्तगिरि'! यह श्री बालाजी की अक्षर संपत्ति!

कलियुग प्रत्यक्ष दैव श्री बालाजी के दिव्य वैभव को

हर महीने... सप्तगिरि पत्रिका में देखिए... पढाइये...

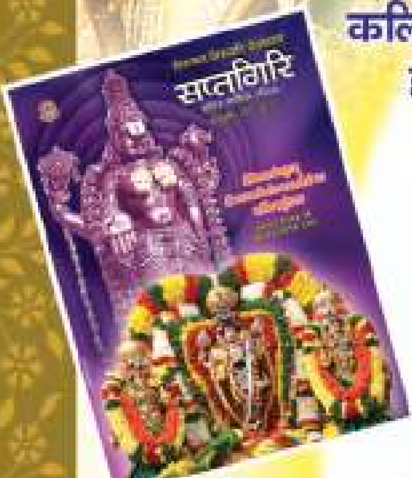

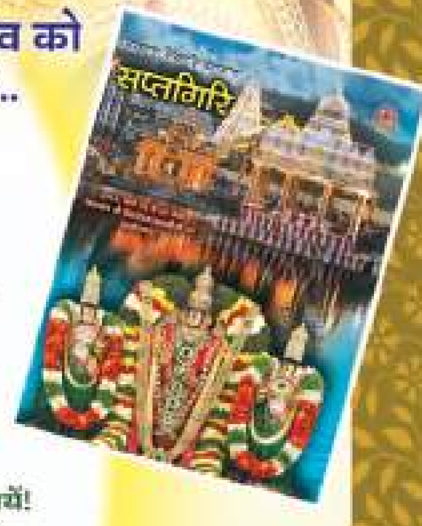

भगवानजी का दर्शन के लिए
अनेक उपाय व साधन है।
कदम-कदम पर प्रणाम स्वीकारने वाले,
आर्तत्राण परायण भगवान की कुछ लोग पुष्पार्चना करते हैं...
कुछ लोग अक्षर पुष्पों से आराधना करते हैं।

श्रीवारि के अक्षर प्रसाद 'सप्तगिरि' को
पढ़ें और पढायें, यह भी उनकी एक सेवा हैं।

हर महीने... 'सप्तगिरि' पढे... अपने रिश्तेदारों से पढायें!
हर महीने अपने घर में ही भगवानजी के दर्शन कर लीजिए...
तिरुमल संबंधित विशेषताएँ जान लें।

'सप्तगिरि' की अभिवृद्धि में भाग लीजिए!
सप्तगिरि मासिक पत्रिका को चंदा भरिये, भराइये।

चंदा विवरण

एक प्रति...	रु. ५.००
वार्षिक चंदा...	रु. ६०.००
जीवन चंदा...	रु. ५००.००
विदेशियों को वार्षिक चंदा...	रु. ८५०.००

सूचना - संस्कृत भाषा के जीवन चंदा की सुविधा नहीं है। केवल वार्षिक चंदा मात्र ही उपलब्ध है।

'सप्तगिरि' मासिक पत्रिका के बारे में अन्य विवरण केलिए कार्यकालीन समयों में संपर्क करें - दूरभाष :
कार्यालय - ०८७७-२२६४५४३
टी.टी.डी. अनुभाग - ०८७७-२२६४३५९
संपादक - ०८७७-२२६४३६०

कार्यालय का पता -
प्रधान संपादक
'सप्तगिरि' मासिक पत्रिका कार्यालय
ति.ति.दे प्रेस कांपौंड,
के.टी.रोड, तिरुपति - ५१७ ५०७.

सूचना, सुझाव व शिकायतों के लिए संपर्क करें-
sapthagiri_helpdesk@tirumala.org

SAPTHAGIRI (HINDI) ILLUSTRATED MONTHLY
Published by Tirumala Tirupati Devasthanams 25-03-2019
Regd. with the Registrar of Newspapers under "RNI" No.10742, Postal Regd.No.TRP/11 - 2018-2020
Licensed to post without prepayment No.PMGK/RNP/WPP-04/2018-2020

रामुडु राघवुडु रविकुलुडितडु।
भूमिजकु पतियैन पुरुष निधानमु॥
अरय पुत्रकामेष्ठि यंदु परमान्नमुन।
परग जनिंचिन परब्रह्ममु॥

- अन्नमय्या